राधाकृष्ण द्वारा प्रकाशित महाश्वेता देवी की अन्य रचनाएँ :
साल-गिरह की पुकार पर, श्री श्रीगणेश महिमा, 1084वें की माँ, जंगल के दावेदार, चोट्टि मुंडा और उसका तीर, अक्लांत कौरव, अग्निगर्भ, मूर्ति, ईंट के ऊपर ईंट, घहराती घटाएँ

पहला हिन्दी संस्करण

1985

मूल्य

27 रुपये 50 पैसे

प्रकाशक

राधाकृष्ण प्रकाशन

2/38 अंसारी रोड, दरियागंज,

नयी दिल्ली-110002

मुद्रक

शान प्रिंटर्स

शाहदरा, दिल्ली-110032

जिन्हें केवल करुणा का पात्र भिखारी बनाके रखा जा रहा है, वे आज पीने और सिंचाई के पानी के लिए खुद लड़ रहे हैं और अपने हाथों कुआँ खोद रहे हैं, अपने हाथों अपना रास्ता बना रहे है—इतना देखकर जा रही हूँ, इसके लिए खुद को धन्य मानती हूँ।

—महाश्वेता देवी

राजा

साप्ताहिक अखबार 'ग्रामवार्ता' में घिसे टाइप में छपे उस विज्ञापन को देखकर भगीरथ जाना चकित रह गया था। चाँद गेड़्या गाँव के गणपति माल को उनकी जीवनी लिखने के लिए एक आदमी की जरूरत थी। आवास और भोजन के साथ पचास रुपये मासिक वेतन।

'ग्रामवार्ता' के संपादक खुदीराम महाती ने कहा था—क्यों जी! काम की तलाश है तुम्हें। बेकार बैठे हो। यह काम करके देखो, गणपति माल अपनी जीवनी लिखवायेंगे।

खुदीराम महांती एक गँवारू नाम है। होना ही है, क्योंकि राधा-कांतपुर चाहे जितना संपन्न हो गया हो, है गाँव ही। यह गाँव पान और बिरोजा के उत्पादन से धनी हुआ है। गाँव में बिजली आगयी है। पशु प्रजनन, मलछी पालन, कृषि प्रशिक्षण जैसे अनेक केंद्र वहाँ खुल गये हैं। ग्रामीण बैंक, डाकघर, लड़कों का हाई स्कूल, लड़कियों का उच्च प्राथमिक स्कूल, दो प्राथमिक स्कूल, क्या नहीं है यहाँ?

भगीरथ केलियाड़ी थाना के खेजुरभा ग्राम का है। खेजुरभा की तुलना में राधाकांतपुर छोटा-मोटा शहर है। जब जो पारटी शासन में होती है, तब तिस पारटी की गुणगाथा का गान करते हुए खुदीराम मजे में ही है। 'ग्रामवार्ता' का अपना प्रेस है। उसमें इलाके के इश्तहार, हैंडबिल, रसीद और बिल-बुक जैसी चीजें छपती रहती हैं।

किसी लौकिक अथवा अलौकिक कारण से खुदीराम को ढेर-सारे सरकारी छपाई के काम मिलते हैं। उसमे से जो कागज बचता है और ऊँची दर पर जो छपाई मिलती है, उसी से 'ग्रामवार्ता' का कागज और छपाई निकल आते हैं। सरकारी विज्ञापन भी उसे नियमित मिलते हैं। राजा के बदलने पर खुदीराम का भाग्य नही बदलता। इसी आधार पर वह टेनिसन की कविता 'दि ब्रुक' के साथ अपनी तुलना करता है।

'ग्रामवार्ता' में शीर्षक के नीचे उड़िया हरफों मे और बंगला में लिखा होता था—"मनुष्य जनमता है और मर जाता है, परंतु मैं! अनंत काल से आगे! बढ़ता जाता हूँ—लाड़ टेनिसन।" इतने सारे विस्मयबोधक चिह्न और 'लार्ड' की जगह 'लाड़' उसके पाठको के भीतर कोई खास प्रतिक्रिया नही पैदा करते थे। वैसे भी उस इलाके मे उड़िया भाषा खासी प्रचलित थी। वर-वधू चाहिए, मकान, जमीन, दुकान आदि के क्रय-विक्रय और किराये पर देने, यात्री स्पेशल बस सर्विस, खोया-पाया, लापता आदि के विज्ञापन इस अखबार मे देने से खूब लाभ होता है। 'ग्रामवार्ता' के कारण गाँव के पोस्ट आफिस का काम और सम्मान दोनों बढ़े हैं। 'ग्रामवार्ता' संभवतः विश्व का पहला और अंतिम अखबार है, जिसके स्थापना-दिवस पर इसके ग्राहक इसे चंदा देते हैं।

खुदीराम भगीरथ को बहुत दिनों से जानता है। खुदीराम और भगीरथ की माँ 'भाई-बहन गुरुजी' के भक्त हैं।

'भाई-बहन गुरुजी' एक महान आदर्श के प्रचार में लगे हुए हैं। उक्त आदर्श भारत की सभी समस्याओं के समाधान मे सक्षम है। भगीरथ यह सब समझना नहीं चाहता है और इसे पागलपन मानता है।

फलस्वरूप उसकी माँ बड़ी मर्माहत हुई हैं। पर खुदीराम ने उन्हें विश्वास दिलाया है और वायदा किया है कि वह भगीरथ को गुरुजी के आदर्श के प्रति आस्थावान बना के रहेगा।

'जय भाई-बहन गुरुजी' का संदेश बहुत महान है। भारत की मुख्य समस्या है जनसंख्या। जनसंख्या अगर कम हो जाय तो देश के निवासी देश मे उत्पन्न वस्तुओं से अपना काम चला लेंगे। विदेशी गेहूँ की आवश्यकता नही होगी।

हाय ! अंग्रेजों के चले जाने से देश का बंटाढार हो गया। अंग्रेज जानते थे कि भारत में इस बात की बहुत जरूरत है कि हर साल कुछ लाख लोग इस दुनिया को छोड़ जायें। इसीलिए वे रोगों की रोक-थाम की कोई व्यवस्था नहीं करते थे और दवा-दारू भी नहीं मँगाते थे।

हैजा, चेचक, मलेरिया, साँप काटना, टाइफायड इस—तरह के अनेक रोगों के उपलक्ष्य मे साल-दर-साल बड़ी संख्या में भारतवासी सुरधाम सिधारते थे।

आज भारत के वे दिन नहीं रहे।

इसीलिए विज्ञापन की सहायता लेनी पड़ रही है।

'भाई-बहन' का आदर्श कितना सहज, कितना फलदायी है। 'जय भाई-बहन स्वामी जी' की शरण में आओ। उनके आदेश से उनके द्वारा दीक्षित सभी पति-पत्नी एक दूसरे को भाई-बहन मानेंगे और उसी के अनुरूप आचरण करेंगे।

फलस्वरूप एक ओर जन्म संख्या में कमी आयेगी तो दूसरी ओर अवरुद्ध कामना से मनुष्य की कार्य-क्षमता बढ़ जायेगी। लोग अपने काम पहले से अधिक क्षमता और दक्षता के साथ कर सकेंगे।

ऐसे आदर्श को खराब कौन कहेगा ? पर भगीरथ इस आदर्श को स्वीकार करने को राजी नहीं है।

"गुरु जी, गुरु पत्नी के साथ क्यों रहते हैं ?"

"वे तो उनकी नेपाली स्त्री हैं।"

"स्त्री तो है ?"

"वे स्वयं आचरण करके दूसरों को शिक्षा दे रहे हैं। शुरू में उनकी भी लंबी-चौड़ी गृहस्थी थी, दर्जनों बच्चे थे। एक दिन उन्होंने अपनी पत्नी को बहन कहकर पुकारा और गेरुआ पहनकर निकल पड़े। फिर काशी, प्रयाग, दुर्गापुर आदि स्थानों पर भ्रमण करते हुए उन्होंने और भी कितने ही विवाद किये। कुछ दिनों बाद सभी को बहन बनाकर छोड़ते गये। तुम इसे अनाचार कहोगे, लेकिन गहराई में जाकर देखोगे तो तुम्हें इसकी सच्चाई का ज्ञान हो जायेगा।"

"कैसी सच्चाई ?"

"अरे भाई, यह अनाचार नहीं, सदाचार है, सदाचार !"

"क्या कहते हैं ! वही गुरुमंत्र लेकर तो घर में पिताजी को माँ 'भइया, भइया' कहकर खाना खिलाती हैं। घर-परिवार और अड़ोस-पड़ोस के लोग हँसी उड़ाते हैं। भाभी के मायके और बहनों के ससुराल में इज्जत बचाना मुश्किल हो रहा है। बेचारे पिताजी मारे शर्म के बाहर के कमरे में ही पड़े रहते हैं।"

इसके उत्तर में गहरी ममता और ज्वलंत विश्वास के साथ खुदीराम कहता है—"अरे भाई, किसी आदर्श की स्थापना करने चलोगे तो लोक-लज्जा को तिलांजलि देनी ही होगी। खुदीराम बोस और वीरेन शासमल की कहानी याद है न ?"

खुदीराम वसु या वीरेन शासमल कभी इस तरह की परिस्थिति में पड़े थे इसकी जानकारी भगीरथ को नहीं है। मगर इस खुदीराम महांती के साथ भगीरथ इसके आगे तर्क नहीं करता। खुदीराम को उनके विश्वास से डिगाना बड़ा मुश्किल है। खुदीराम और भी कुछ अद्भुत विश्वास पाले हुए है, जिनसे उसे डिगाना असंभव है। मसलन उसकी मान्यता है कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस अभी जिंदा हैं, सौ रुपये के नोट विलायत में छपते हैं, पेंसिलीन के वास्तविक आविष्कार कर्त्ता दिग्विजय महांती हैं।

अंत में खुदीराम कहता है—"खैर, वह सब छोड़ो, तुम्हारी माँ को मैंने वचन दिया है कि मैं तुम्हारे लिए नौकरी का जोगाड़ करूँगा।"

"आपने बैंक में नौकरी की बात तय की थी उसका क्या हुआ ?"

"यूनियन रे भाई यूनियन ! वह जो तुमने रामेश्वर बाबू की ओर से चुनाव-प्रचार किया था, वही सारे फसाद की जड़ है।"

"मगर उसके लिए तो आपने ही कहा था।"

"हाँ, कहा था, क्योंकि उसने कहा था कि वह उन दल की ओर से चुनाव लड़ रहा है, जो सरकार में है। सो, तुमने प्रचार किया। अब तुम्हीं बताओ कि यह किसे मालूम था कि वह दूसरे दल में चला जायेगा ?"

"उसका तो कुछ नहीं बिगड़ा। बीच में मैं मारा गया।"

"इतने बिरोजा सेठ हैं उनकी पूँछ पर पाँव कौन रखे ? इसके अलावा इतनी लारियाँ है इनके पास।"

"खैर, आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूंगा।"

"शशांक बाबू ने क्या कहा ?"

"कोई और काम निकलेगा तो बतायेंगे !"

शशांक बाबू कलकत्ता के एक नामी अध्यापक हैं। संप्रति एक शोध-संस्थान में कार्यरत है। आजकाल देशी-विदेशी पैसों से तरह-तरह के सामाजिक तथा आर्थिक शोध हो रहे हैं। इसी तरह के कुछ कामों में उन्होंने भगीरथ को लगाया था और उसके काम से बहुत खुश थे। उसे एम० ए० में दाखिला लेने का भी निर्देश दिया था।

भगीरथ अधिक महत्त्वाकांक्षी नहीं है। बैंक मे किरानी का काम पाकर भी वह अपने को धन्य समझेगा। उसकी जो आर्थिक और पारिवारिक स्थिति है उसमें आगे की पढ़ाई संभव नहीं है। प्राइवेट रूप से परीक्षा नहीं दे सकेगा वह। और कलकत्ता में पढ़ाई करने का खर्च कौन देगा ? कोई काम-काज करते हुए पढाई चलायेगा ऐसा परिचय भी उसका नहीं है।

शशांक बाबू की धारणा है कि भगीरथ में काफी प्रतिभा है। शशांक बाबू नाटकीय भाषा में आवेग के साथ बात करते हैं।

"जाओ बालक ! महत्त्वाकांक्षा की आग में तपो, तिलमिलाओ। कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है यह कैसी बात है ? फिर तो जैसे गोबर पाथकर बड़े हुए हो, वैसे ही गोबर पाथते जीवन कटेगा।"

भगीरथ खिसियानी हँसी हँसकर चुप रह गया। लाखों-लाख ग्रामीण युवकों की स्थिति उसी जैसी है। महत्त्वाकांक्षा की आगमे जलने और तिलमिलाने लायक परिस्थिति नहीं है। गाँव मे रहकर गोबर की गंध से बचकर चलना मुश्किल है। गोशाला में गोबर, खेत में गोबर, गोबर का उपला, घर के कमरे और आँगन गोबर से लिपे हुए—जीवन ही गोबर से सना है।

भगीरथ तो अपने पिता की तरह भी नहीं है कि धान की रोपनी करेगा और खेत की गोड़ाई और निराई करेगा, क्योंकि वह बंगला मे ऑनर्स ग्रेजुएट है। पिता अभी भी खेती करते हैं और घर के सामने तरकारी उगाते हैं। जिस दिन से भगीरथ को माँ ने उसके पिता को 'भैया' कहके बुलाना शुरू किया है उस दिन से पिता विभ्रांत-से हो गये हैं और

खेती-बाड़ी के काम में और जोर-शोर से लग गये हैं।

गाँव की हाट में सब्जी बेचना, दुर्गा पूजा में शहर से कपड़े लाकर बेचना, इस तरह के बहुत से काम करने में वह असमर्थ है।

प्राइमरी स्कूल की टीचरी और क्लर्की के बीच उसकी महत्वाकांक्षा सीमित है। फिर ब्याह। कुछेक बेटे-बेटियों की उत्पत्ति। खेजूरभा बहुत ही पिछड़ा हुआ गाँव है। राधाकांतपुर जैसा शहरी लक्षण जरा भी नहीं है उसमें।

खुदीराम सलाह देता है—"गणपति बाबू के पास जाओ। क्या आदमी है! उसे लेकर 'नावेल' लिख सकते हो। ओह! कमाल का आदमी है।"

"क्यों? ऐसी क्या बात है उनमें?"

"यह जो रामेश्वर बाबू हैं न, इनके ऊपर चढ़ बैठे। भागते नहीं तो पीट डालते।"

"मारने आ गये थे?"

"हाँ। गुस्सा होकर पीटने को दौड़ाया, जैसे लोग खेत खाते बैल को हाँकते हैं।"

"ऐसे आदमी के पास मुझे भेज रहे हैं? भगीरथ उदास होकर कहता है।"

"मैं चिट्ठी लिख दूँगा। मुझे बहुत मानते हैं।"

"मारने को दौड़ाया क्यों?"

"अरे भाई! स्वाधीनता-संग्राम में बार-बार जेल खटा है। फिर भी पेंशन नहीं लेते। रामेश्वर बाबू को जब पता चला कि एक ऐसी पिछड़ी जाति का आदमी जेल खट चुका है, सन् बयालीस के आंदोलन में कांग्रेस का तिरंगा झंडा थाने पर फहराया था, तो बोले—'यह क्यों पेंशन नहीं लेगा?'"

"वे पेंशन नहीं पाते?"

"अरे सुनो तो!"

"बोलिए।"

"रामेश्वर बाबू को मालूम नहीं था कि वे पेंशन नहीं लेना चाहते।

कितनी ही बार लोगों ने जाकर सुझाव दिये, पर किसी की बात नहीं सुनी। मजेदार आदमी हैं।"

"फिर क्या हुआ?"

"रामेश्वर बाबू जिस समय उनके वहाँ पहुँचे उस समय वह साँप का विष निकाल रहे थे।"

"क्यों?"

"अरे! वह अद्भुत आदमी हैं। साँप पकड़ने में माहिर। साँप पकड़-कर बेच देते हैं।"

"फिर क्या हुआ?"

"जिस समय रामेश्वर बाबू ने पेंशन का प्रस्ताव किया वह साँप को पिटारी में रख रहे थे, बोले—स्वाधीनता लड़कर ला दी, तो कमा-खा रहे हो। अब मुझे भीख माँगने की सीख देने आये हो?"

"वाह! अच्छा आदमी है!"

"इसी बात को लेकर बहस शुरू हो गई। आखीर में नाराज होकर मारने दौड़े।"

"कुछ जमीन-जायदाद है?"

"कह नहीं सकता।"

"तो फिर...।"

"लिखा है, तो वेतन देंगे जरूर।"

"ऐसे आदमी की जीवनी बड़ी मनोरंजक होगी। काफी-कुछ देखा है जीवन में।"

"वह तो है ही।"

"गाँव कहाँ है?"

"झाड़ग्राम थाना में पड़ता है।"

"आपके अखबार में क्यों विज्ञापन दिया?"

"मुझे बहुत मानते हैं। मेरे पिता भी उनके साथ जेल में थे। जेल से आने के बाद ही उनकी मौत हो गयी। शोक सभा में वे भी आये थे। इसी कारण मेरे लिए उनके मन में प्यार है।"

"विज्ञापन के पैसे देते हैं।"

"देते हैं कहना ठीक नहीं है। कुल मिलाकर दो विज्ञापन दिये हैं। बारह-तेरह साल पहले एक विज्ञापन दिया था। पैसे नहीं दे सके थे। दोनों सांप भेज दिया था।"

"पैसों के बदले सांप?"

"अरे बच्चा! सांप तो बिकने वाली चीज है। वह जो बंबई में तरह-तरह की कंपनियां दवाई बनाती हैं—वे खरीदती है। किसके मार्फत खरीदती हैं, यह नहीं मालूम, मगर इतना मालूम है कि विषधर सांप अच्छी कीमत पर बिक जाते हैं।"

"नहीं-नहीं, जो लेकर आया था उसे सर्पसहित 'फेयरवेल' दिया मैंने। मगर बाद में लगा बड़ी बेवकूफी हो गयी।"

"क्यों?"

"जो व्यक्ति सांप लेकर आया था उसे भात-दाल खिलाकर लौटाया ही था कि उसकी पीठ पर खुद खरीदार, यानी जो खरीदते है उनका एजेंट आकर हाजिर। आकर बोला कि गणपति माल की आज्ञा है कि जाकर सांप खुदीराम से खरीदो और साठ रुपये देना उसे। इससे एक पैसा कम नहीं।"

"आश्चर्य!"

"उसी तरफ मेरी थोड़ी-सी जमीन है, जो काश्त पर दी हुई है। बीच-बीच में उसे देखने आता हूँ। फसल घर नहीं लाता। वहीं बेच देता हूँ। उस सिलसिले में जब वहां गया तो मुझे खूब डांटा, बहुत दुखी हुए कि ऐसा बेवकूफी का काम किया मैंने। बोले—अरे मूरख, जो ले गया था, वही देखभाल करता। साथ ही खरीदार भी भेजा। निखालिस गेहुँअन थे। विज्ञापन का खर्चा नगद देना क्या मेरे वश का है?"

"आपने इस पर क्या कहा?"

"बोला—काका, आपसे पैसे लेना मेरे लिए उचित नहीं है। मेरी जमीन की देखभाल करते हैं आप। फसल बिकवा देते हैं। इसके लिए बल्कि मुझे ही पान-बीड़ी का खरच देना चाहिए बतौर प्रणामी के। मेरी बात सुनकर खुश हुए, बोले—बच्चा, तुम्हारे बाप के पास अक्ल थी जो यह जमीन छोड़ गये। तुम एक बात नहीं समझ पाये कि सांप खरीदने वाले मुझे कभी ज्यादा दाम नहीं देंगे। हजार बहाने करेंगे। ऐसी निचाट

जगह जाकर सांप खरीदेंगे तो एक जोड़े का चालीस से ज्यादा नहीं देंगे। तुम्हें ज्यादा देते।"

"फिर क्या हुआ ?"

"मैंने कहा, आप मेरे लिए जो करते हैं उसका तो मैं कभी कुछ नहीं देना। 'ग्रामवार्ता' आपका ही अखबार है। जब जरूरत होगी विज्ञापन छाप दूंगा आपका। समझे भगीरथ ? ऐसा आदमी है वह।"

"दादा, समझ तो गया। शशांक बाबू का काम करते हुए मैं इधर-उधर थोड़ा घूमा-फिरा हूँ। मेरी बहुत इच्छा है उनका काम करने की। पर वेतन में सांप मिलें तो बड़ी मुश्किल होगी। उन्हें लेकर कहाँ जाऊँगा।"

खुशीराम महांती उसे आश्वासन देते हुए बोले—"नहीं, नहीं। मैं उन्हें जानता हूँ। जब वे कह रहे हैं कि इतने रुपये दूंगा, तो चिंता करने की बात नहीं है।"

"अच्छा! पहुँचूंगा कैसे ?"

"बताता हूँ।"

दो

चांदगेड़ा पहुँचने के लिए भगीरथ को बस पकड़कर नरसिंहपुर जाना पड़ा। खुशीराम महांती कभी इन सभी स्थानों पर जंगली धूनी, मधु, आंवले आदि का कारोबार करता था। चांदगेड़ा में उसकी जमीन भी थी। उसी ने भगीरथ को वृंदावन महापात्र के बारे में बताया था। कहा था—देख आओ तो, वृंदावन आजकल गुरुपूर्णिमा में क्यों नहीं आ रहा है ? यह तो उनका बड़ा प्रिय चेला था।

वृंदावन ने भगीरथ का स्वागत किया। उसे घर ले गया अपने। नरसिंहपुर में उसकी बहुत बड़ी दुकान है। आधे में पंसारी की दुकान है और

आधे में कपड़े की बिक्री होती है। साइनबोर्ड बता रहा है कि वहाँ सभी प्रकार के 'आर्डर' की 'सप्लाई' होती है। नीचे की तरफ लिखा है—'एँड लेबर सप्लायर्स'। पर इस अश को पेंट का पोचाड़ा मारकर काट दिया गया है।

"क्या अब लेबर सप्लाई नही करते ?"

"नही, गणपति माल मना कर गये। तभी से यह धंधा छोड़ दिया।"

"क्यो ?"

"उसकी भी एक कहानी है।...तो आप चांदगेड़्या जायेंगे ? गणपति माल के पास ? वह क्या यहाँ हैं ?"

"कहाँ हैं ?"

"जाइये, जाकर देखिये।"

"चांदगेड़्या कहाँ है ?"

"आज नही जा पायेंगे। रास्ता सरकारी जंगल से होकर गुजरता है। उस रास्ते पर राहजनी बहुत होती है। आदमी तो अब आदमी नही रहा। यहाँ पुलिस चौकी बन जाती तो बड़ा उपकार होता। मगर कुछ भी नहीं हो रहा।"

"तो फिर ?"

"अरे पानी में तो पड़े हैं नही। आज यहीं रहिये। मेरे पास ठहरने की व्यवस्था है। आते-जाते लोग यहीं ठहरते हैं।"

मिट्टी की दीवारों और पक्के फर्श वाला संपन्न व्यक्ति का मकान। उसकी पत्नी का चेहरा जैसे पूर्णमासी का चाँद। ऐसा सुंदर चेहरा-मोहरा है-उसका। वह दोनों के लिए चाय दे गयी। दीवार पर एक सधवा महिला का फोटो टँगा था, जिस पर सिंदूर लगाया गया था।

"हमारी पहली पत्नी। बच्चे हुए नही। बीमार ही रहती थी। मेरे साथ कोई संपर्क नही रह गया था।"

भगीरथ को कोई आश्चर्य नही होता। गाँव का आदमी आजकल भी बाहरी आदमी से अपनी अनेक घरेलू बातें कह देता है, और पूछता भी है।

"तब जाकर सुदीराम बाबू के गुरुजी की शरण में गया था। भाई और बहन का संबंध...खूब शांति मिली थी।"

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वृंदावन ने गहरी सांस लेकर कहा था —"सती-लक्ष्मी स्वर्ग गयी। जाते समय कह गयी—तुम गुरुमत वापस कर देना। फिर ब्याह करना। नही तो तुम्हारा नाम लेवा कोई नहीं रह जायेगा। इसीलिए केओनझार में यह दूसरा ब्याह किया। तीन साल मे दो बेटे पैदा हुए। इसलिए गुरुमत की रक्षा भी नही कर पाया और संपर्क भी छिन्न-भिन्न हो गया।"

"अरे हाँ, खुदीराम भैया ने बताया तो था।"

"जाकर कहियेगा—हाय रे पातकी मैं। मगर अब क्या किया जाय?"

"नही, नही, ठीक ही किया आपने। वह सब क्या चलता है? पति-पत्नी एक-दूसरे को 'भैया हो!', 'दीदी हो!' कहें यह भी कोई बात है?"

"और मेरी पत्नी को तो आपने देखा।"

"हाँ, देवी जैसा चेहरा है।"

—तभी देवी जैसे चेहरे वाली ने उड़िया में कुछ कहा, जिसका तर्जुमा वृंदावन ने यों किया—भोजन लगा दिया है, बुला रही है।

कांसे की बड़ी-सी थाली मे भात, भात की गोद में घी का पिघलता हुआ डला, गोडेदार कटोरे मे दाल और करेले की सब्जी। 'हमारे घर मास-मछली नही चलती।' खाने के बाद पान-सुपाडी। तख्त पर बिछौना, अत्यंत सख्त पतला तकिया। 'यहाँ मच्छर नही है। यही एक सुख है। पानी ही नहीं है, मच्छर कहाँ से होंगे? हाँ, साँप जरूर जहाँ-तहाँ निकलते हैं। उसी से...।'

"गणपति ने आपकी पिटाई की थी, सुना है।"

"हमारा एक भांजा है। कंटरेक्टर की दलाली करता है। चांदगेड़ या और आस-पास के इलाकों से कुछ माल, शबर और संथाल (जातियों के) मजूर मैंने ही इकट्ठा करके उसे दे दिए थे। वह उन्हें धनबाद ले गया। कंटरेटर ने भाजे को क्या दिया, क्या नही, मुझे कुछ पता नही। भाजे ने मजूरों को एक फूटी कौड़ी नही दी। कुछ दिन बहुत किचकिच चली। मैं न तीन में या न तेरह मे। लेबर जुटा दिया था, माथा पीछे एक रुपया

मिला था।"

"कितने लेबर गये थे?"

"पचासेक लोग थे।"

"फिर?"

"उन्हें पैसे नहीं मिले तो गणपति माल ने मुझे पकड़ लिया—तुम्हारा ही सारा दोष है, महापात्र। तुम लेबर न जुटाते तो तुम्हारे भाजे को लेबर कहाँ से मिलते? इसके बाद बातों-ही-बातों में नाराज हो गये और पीट डाला मुझे।"

"आपने कुछ नहीं किया?"

"नहीं, नहीं, लोग उनको बहुत मानते हैं। कितने ही उनके समर्थक हैं। इसके अलावा वे बड़े गुणी आदमी हैं।"

"कैसे गुणी?"

"जानते हैं हम हमेशा साँपों के बीच रहते हैं। वह आकर झट से कहेंगे, तुम्हारे घर में साँप है। और साँप पकड़कर ले आयेंगे। बाप रे! जरा भी डर नहीं लगता उन्हें। साँपों को पकड़कर उनको पूँछ से पकड़कर खेलाते हैं। उनके नाम रखते हैं।"

"जिसे पाते हैं उसी को पीटने लगते हैं?"

"जिससे गुस्सा हो जायें, उसे पीटने दौड़ पड़ते हैं। गदागद् पीटने लगते हैं। बाद में कहते हैं—गुस्सा क्यों दिलाया? मगर आप उनके पास किस लिए जा रहे हैं?"

"वह अपनी जीवनी लिखवाना चाहते हैं।"

"ओह हाँ! कह तो रहे थे। देखियेगा, कहीं आपकी तनखाह में साँप न देने लगें। मुझे उन्होंने एक तावीज दी है जिससे मैं रात में भी साँप का नाम ले सकता हूँ। रात हो या दिन साँप हमारे घर के किसी आदमी को नहीं काटते। गणपति माल जिस दिन मरेंगे, समझिये एक वज्र टूटेगा। चलिये, अब सो जाइये। सवेरे तो बहुत लंबा रास्ता नापना होगा। रास्ता बन तो रहा है। काम शुरू हो गया है। बन जाय तो इतना घूमकर नहीं जाना होगा। रास्ता छोटा हो जायेगा।"

दूसरे दिन सवेरे अनेक धन्यवाद कहकर और नमस्कारांते भगीरथ

विदा हुआ। शशांक बाबू के काम के सिलसिले में इस तरह पैदल चलने का उसे अच्छा अभ्यास हो गया था।

यूकिलिप्टस के जंगल में से सर्पिल रास्ता क्रमशः ऊँचाई की तरफ जा रहा था, फिर नीचे उतर रहा था। फिर ऊपर और नीचे। पीछे जंगल था और तेज धूप पीठ को सेंक रही थी। अचानक रास्ते के एक मोड़ पर चांदगेंड्या प्राइमरी स्कूल दिखाई पड़ा। स्कूल के साथ गणपति माल का दुतल्ला मकान था।

दुतल्ला मिट्टी का मकान। सामने चबूतरा। चबूतरे पर गले में पड़ी रस्सी से बंधी एक मोटी-ताजी बकरी, जिसकी भूखी आँखें गडी थीं सूखने के लिए डाली गयी मसूर की तरफ। एक अत्यंत बलिष्ट प्रौढ़ा, जिसके बाल सिर के ऊपर खींचकर कस के झोटे की शक्ल में बंधे थे, मसूर को हाथ से फैला रही थी।

"यह क्या गणपति माल का घर है?"

"हाँ, आप कौन हैं?" प्रौढ़ा ने मुँह घुमाकर पूछा।

"उन्होंने एक विज्ञापन दिया था''' खुदीराम महांती ने मुझे भेजा है।"

"वह तो यहाँ नहीं हैं।"

"नहीं हैं?"

"नहीं।"

प्रौढ़ा की छाती आवेग से भर उठी। बोली—"लड़कों से लड़कर, मुझे उलटी-सीधी कहकर झापावाड़ी चले गये हैं।"

"झापावाड़ी! कहाँ है झापावाड़ी?"

"यहाँ से काफी दूर है। आइए, बैठिए। लड़कों को बुलाती हूँ। अरे रतन! राजा रे!"

एक दस साल का लड़का दौड़ता हुआ आता है। गाँवों के लड़कों जैसा ही एक लड़का। काला, रूखे बाल, स्वास्थ्य ठीक-ठाक। शरीर पर डोरिया का पायजामा, जिसके पायचे फटे हुए थे। शायद उसी को फाड़कर इजारबंद बनाया गया था।

"क्या है, दादी माँ?"

राजा/

"अपने बाप को बुला। दुकान पर गया है।"

भगीरथ घास की रस्सी से बनी एक चौकी पर बैठ गया। प्रौढ़ा ने एक हाथ-पंखा पास फेंक दिया। यह इस बात का इशारा था कि 'खुद अपने हाथ से पंखा झलो।' एक लोटे मे पानी दिया। जल देकर अभ्यर्थना करना इस अंचल का नियम है। आदिवासी घर में जाने पर पाँव धुलाया जाता है, पोंछा जाता है, तेल लगाया जाता है। फिर धुलाया और पोंछा जाता है। इसके बाद पानी का गिलास या लोटा दोनों हाथों में पकड़कर अर्घ्य की तरह दिया जाता है। यह सब कुमारी बालिका करती है। फिर आप घर के चौखट पर पाँव रखेंगे। जो आदिवासी नही हैं वे भी सबसे पहले पानी पिलाते हैं। भगीरथ ने भी पानी पीया।

प्रौढ़ा बड़बड़ाने लगी—"हमेशा के ऐसे ही हैं। कही जाते हैं तो मुझे क्यों साथ नही ले जाते? मेरा क्या दोष है?"

"क्या, चले गये हैं?"

"और क्या?"

"सब सामान ले गये हैं अपना?"

"साधू, यतन, टोका, भाला और कानू को तो ले गये हैं। बाकी को शायद बाद में ले जायेंगे। मैं उनके साँपो को भला कैसे सँभालूँगी? पता नही कौन मेढक खाता है, कौन चूहा खाता है!"

भगीरथ चौंककर पूछता है—"वे सब साँप कहाँ हैं?"

"अपनी-अपनी पिटारी में।"

"कितने साँप ले गये हैं?"

"पाँच।"

गुस्सा करके घर छोड़ते समय जो आदमी साथ मे पाँच साँप साथ लेकर जाता है और कई एक साँप घर मे छोड़ जाता है, ऐसे आदमी की जीवनी लिखने का काम हाथ मे लेना क्या बुद्धिमानी है?

"कैसे साँप है?"

"गेहुँअन।...लो मेरा लड़का आ गया।"

प्राय: तीस वर्षीय एक युवक उसी समय साइकिल से उतरता दीखा।

"आप?"

"भगीरथ जाना।"

"नमस्कार करता हूँ।"

"नमस्कार।"

"आप यहाँ···?"

"आपके पिता ने एक विज्ञापन दिया था···।"

"हाँ, समझ गया।"

युवक थोड़ी देर उँगली से मिट्टी कुरेदता रहा, फिर दुःखी स्वर में बोला—"वे तो झावावाड़ी चले गये हैं। वहीं जाने से भेंट होगी।"

"झापावाड़ी कहाँ है?"

"यही, तीन कोस होगा यहाँ से।"

भगीरथ ने मन-ही-मन तय कर लिया था कि ऐसे क्रोधी आदमी की जीवनी वह नहीं लिखेगा, पर उसे देखने का उसके अंदर तीव्र कौतूहल जाग उठा था।

"मुझे वहाँ पहुँचा देंगे? आपके पास तो साइकिल है।"

"ठीक है। पर आधा कोस पहले ही छोड़ दूँगा। मुझे देख लेंगे तो बापू मारने दौड़ेंगे।"

"क्यों?···यों ही पूछ रहा हूँ।"

"वह लंबी-चौड़ी कहानी है।"

माँ-बेटे ने एक-दूसरे की तरफ आँखों-ही-आँखों में देखा। फिर माँ ने नीरस गले से कहा—"उन्हें देखा है आपने?"

"नहीं।"

"क्षुदीराम क्या पागल हो गये हैं कि किसी भलेमानुस को ऐसे गुस्से-वर और खर्रा आदमी के पास झट से भेज दिया।"

"तो फिर क्या करूँ? लौट जाऊँ?" भगीरथ ने पूछा।

"हरी, तू क्या कहता है?" माँ ने बेटे की राय माँगी।

"नहीं, लौटेंगे क्यों? इतनी दूर आये हैं मिलने को, तो मिलके जाइये। बापू के साथ हम भाइयों और माँ का यह पुराना झगड़ा है।"

"झगड़ा?"

"अब कैसे समझाऊँ आपको?"

अचानक माँ बोल पड़ी—"बच्चा, आपको एक बात कहती हूँ। ऐसा करिये, आज यहीं रहिए। बाद में जैसा ठीक समझिये करिये। यह मेरा बड़ा लड़का है—कृषि आफिस में चपरासी है। और छोटा गाँव के स्कूल में मास्टर है। वह तो पास हो गया। इससे नहीं हुआ।"

"दो बेटे है ?"

"ना। बाद वाले दोनो बाप के भक्त हैं। बाप जहाँ, वे भी वहाँ। वे भी बाप के साथ गये है पर वे आ जायेंगे। बाप उन्हें भेज देगा।"

"यह बच्चा पोता है शायद ?"

"हाँ, बड़ी और मझली बहुएँ बहिनें हैं। दोनों मायके गई हैं। उनकी माँ का कोई व्रत है। इनका ससुर बड़ा आदमी है। काठ-चिराई की मशीन लगाई है उसने। अपने नाम के साथ 'माल' नहीं लिखता, 'राय' लिखता है।...अच्छा, भात चढ़ाती हूँ।"

हरिलाल भी बोला—"इसी मशीन से उनको बड़ा लाभ हो रहा है। हम दोनो भी एक बार घूम आते। कल सवेरे आपको ले चलेंगे।"

"भात चढ़ा दूँ, बेटा ?"

"ठीक है। नहाने जा रहा हूँ।" भगीरथ बोला।

हरिलाल बोला—"दुतल्ले पर रहिए, खूब हवा आती है। और माँ सब कहानी बता देगी आपको।

प्रौढ़ा बोली—"हाँ बच्चा! यह अपनी जीवनी लिखायेंगे यह तो बहुत अच्छी बात है। मगर हमे भी तो कुछ कहना है, क्यों ? मैं पहले ही बता देना चाहती हूँ। वह तो मेरे नाम से सात कहानी कहेंगे। वह सब विश्वास मत करियेगा आप।"

भगीरथ को अब वे उसके लिए निर्दिष्ट कमरे में ले गये। प्रौढ़ा ने भगीरथ के सशंकित भाव को लक्ष्य करके कहा—"आप डरियेगा नहीं। उनके साँप तो दूसरे कमरे में हैं। चबूतरे के उस पार जो कमरा देख रहे हैं, उसमें। बुद्धि खूब है उनमें। ओ हरी, देखा न सब कागज-पत्तर। बाबू समझ जायेंगे। कागज-पत्र देखकर समझना मुश्किल नहीं है कि गणपति माल मे व्यावसायिक बुद्धि का अभाव नहीं है। कोई अनोखीलाल कापड़िया है, जिसके साथ साँपों को किसी लेबरोटरी में भेजने के लिए

किये गये करार के कागज थे।"

"यह सब तो अंग्रेजी में लिखा है। वे क्या अंग्रेजी जानते हैं ? इनके साथ संपर्क कैसे रखते हैं ?"

"पोखरी में एक हाई स्कूल है। वहाँ का हेडमास्टर सब पढ़ कर बताता है और जैसा कहते हैं वैसा उत्तर लिख देता है।"

भगीरथ ने देखा एक चमचमाता हुआ शीशे में मढा मानपत्र भी पड़ा है।

"इसी से तो नाराज हुए। बोले, मैंने उन लोगों को भगा दिया था। तू, कुजलाल, मेरा बेटा होकर क्यों गया वहाँ ? 'पिताजी नहीं आ पाये', यह कहकर मानपत्र लेने गया क्यों ?"

"पेंशन भी तो नहीं लिया उन्होंने ?"

"नहीं। कितनी ही बार लोग आये, कितना समझाया-बुझाया, पर किसी तरह राजी नहीं हुए, बोले, 'लड़-लड़ कर स्वाधीनता क्या इसीलिए ले आये थे कि बाद में सर्टिफिकेट लगा कर पेंशन के लिए दरखास्त लिखते फिरें ? भिखारी समझा है मुझे ?' बहुत से लोगों ने, जिन्होंने कुछ किया था या कुछ नहीं भी किया था, इधर-उधर घूम-फिर कर पेंशन ले लिया। पर हरी के बाप ने इस तरह का कोई धंधा नहीं किया।"

नीचे दो कमरे हैं। ऊपर भी दो कमरे हैं। नीचे के कमरों में बड़ा और मंझला रहते हैं। ऊपर मैं और दोनों छोटे वाले। हरी के बाप अपने साँपों के साथ उस कमरे में रहते हैं।

इस कमरे में तख्त रखा है, एक कुर्सी और छोटी मेज। दीवार पर झूलते कैलेंडर में काली की तस्वीर है। कमरे के कोने में एक ताक पर कुछ स्कूली किताबें सजाई हुई हैं। प्रौढ़ा कहती हैं—"रात में ऊपर के कमरे में पड़ी-पड़ी बिसूरती रहती हूँ। दिनोदिन कैसे तो होते जा रहे हैं हरी के बाप !"

भगीरथ ने झिनाई नदी में स्नान किया। उसे घर पहुँचा कर हरी-साल अपने ससुराल गया। माँ को बोलता गया कि वह रास्ते में स्कूल से कुजलाल को साथ ले लेगा। और झींगा फूल खिलते-ही लौट आयेगा। फिर भगीरथ की तरफ देखकर कहा—"मेरी माँ, घड़ी का वक्त नहीं

समझती। मुर्गे की बाँग से उसके लिए सवेरा और झींगा फूल खिलने से शाम होती है।"

प्रौढ़ा ने एकाएक किशोरी की तरह लजाते हुए गर्व के साथ कहा—"मैं तो हमेशा की ऐसी ही हूँ। जंगल से काठ काटकर लाती थी। जान-सुन कर ही तेरे बाप ने मेरे बापू से माँगकर मुझसे ब्याह किया था। रंग मेरा कैसा काला है। और वे गोरे हैं। वे हमेशा मुझे कुसुम रंग की साड़ी ला देते है। साड़ी पहनती तो कहते—'ओह! हरी की माँ तू तो ऐसी लग रही है जैसे अंतसी के पौदे पर लदे फूलों की शोभा।' ऐसी ही बातें करते हैं।"

हरीलाल साइकिल पर रतन को लेकर चला गया। बोला, "पैंट-कमीज स्कूल पर पहना लूँगा।"

प्रौढ़ा भात पकाने चली गई। धूप की गर्मी के साथ चिलचिलाता हुआ दिन चढ़ता जा रहा था। चबूतरे पर से जलाने की लकड़ी उठाती हुई प्रौढ़ा बोली—"छावनी पर वे लोग झील काटेंगे। मुझे भी बुला रहे थे। चलो, पूजा देना और जल्दी-जल्दी काम करवाना। मैं नहीं गई तो गुस्सा होकर चले गये। यह बात मन को मथ रही है।"

प्रौढ़ा की बात और गले की आवाज में दर्द फूटा पड़ रहा था। गणपति माल के अंदर ऐसा क्या है कि उसकी प्रौढ़ा पत्नी इस उम्र में भी उसके वियोग में इतनी कातर हो रही है?

"बेटों के साथ मेरा मेल नहीं खाता, न बहुओं के साथ ही। मैं तो वही जंगली ही रह गई। उनसे ही दो बातें कर लेती थी। अकेली सो भी नहीं पाती। वे खगा और बगा को भी साथ ले गये। ठीक है। मैं भी जिधर सींग समायेगी, चली जाऊँगी। बहुत मन करता है कहीं चली जाऊँ। पर सोचती हूँ—मानी आदमी की औरत हूँ। उसका मान जायेगा।"

इतनी देर अपने आपसे बातें करने के बाद भगीरथ से बोली—"बैठिए, खाना परोसती हूँ। आपके लायक खाना तो है नहीं।"

कुम्हड़े और सहजन की भुजिया, बड़ी की रसेदार और भात के साथ करेली की सब्जी। खूब खाया भगीरथ ने। भगीरथ को बड़े बेटे के कमरे में लेटने का आग्रह करके प्रौढ़ा ने अपना भोजन निबटाया और जब तक

वह रसोई का काम समेटकर आई तब तक भगीरथ ने एक झपकी ले ली।

नींद टूटते ही प्रौढ़ा हाजिर हो गई, बोलीं—चाय लेंगे ? बनाती हूँ। शरमाने की जरूरत नहीं। हरी के बाप तो चाय और बीडी पर ही रहते हैं।"

बिना दूध की लाल चाय आ गई। भगीरथ के पास बैठकर प्रौढ़ा ने पूछा—"अच्छा बच्चा, आप तो बहुत कुछ जानते हैं। मान लीजिए, सौ साल पहले कोई पत्थर की पटिया झील में दबी हुई हो, तो क्या वह मिल सकती है ?"

"पत्थर की पटिया ?"

"यही तो सारी कहानी की जड है। उसी से तो हरी के बाप पगलाये हुए हैं। हम लोग माल हैं। बेदियां जाति कह सकते है। हरी के बाप का कहना है कि सैकडों बरस पहले हमारे उस समय के बंशधर किसी राजा की ओर से खूब लड़ाई किये थे।"

"कहाँ ?"

"वही जानते हैं। उन जगहों पर आजकल जगल है और जैसा वह पहाड़ दीख रहा है वैसे पहाड़ हैं। हरी के बाप कहते है कि जिस राजा की ओर से लड़ाई की थी हमारे पूर्वजों ने, उस राजा ने पत्थर की पटिया पर लिखकर झील में प्रतिष्ठा कर के पाँच गाँवों के बराबर जमीन दान में दी थी ···।"

"आपके पुरखो को ?"

"ना बाबा, झूठ बोलकर क्या मुझे नरक में जाना है ? हम तो हमेशा के गरीब है। हरी के बाप का वंश शूर-बीर था। उन्ही के पुरखों ने यहाँ लाकर सभी को बसाया। उन जगहों के वह राजा बने। उन्ही जगहों पर आज के चाँदगेड़्या, झापाबाड़ी, पोखरी, झिनाइगेड़्या और मोलबुनी—ये पाँच गाँव बसे हुए हैं।"

"अच्छा।"

"पाँच गाँवों में पाँच मनसा देवी के थान हैं वहाँ पर सावन की संक्राति के दिन मालवंश मनसा देवी का पूजन करते है।"

"अच्छा !"

'देखिए न, इसी से समझा जा सकता है कि ये सब गाँव इनके राज मे पड़ते थे। और उस झील का नाम भी तो मालदीघी है। उससे भी यही बात साबित होती है।"

"हाँ, है तो।"

"ये सब बातें हरी के बाप नही जानते थे। यही···दसेक साल पहले उनको पता चला।"

"किसने बताया ?"

"हेड मास्टर के बेटे ने। बहुत पढ़ा-लिखा है। बाहर के कितने ही देशों में गया है। वह तो आग लगा कर चलता बना। इधर यह पगला उठे। बोले—"देखो हरी की माँ!' कभी 'तू' छोड़ कर 'तुम' नही कहा। अब बोले— 'देखो हरी की माँ! मैं फिर राजा हो सकता हूँ, अगर वह पत्थर की पटिया ढूंढ निकालूं।' आप ही बताइये है कि नही निरा पागलपन!"

"फिर राजा हो जायेंगे ?"

"ऐसा ही तो कहते हैं। कहते हैं—'पाँच ठों गाँवों मे जितने शबर, संथाल, भूमिज देखती हो सभी को हमने लाकर बसाया था। हमारे पास आज जमीन नही है। उनके पास भी नही है। राजा ही जब बिना जमीन का हो, तो प्रजा के पास कुछ हो सकता है ?"

"अच्छी बात कही उन्होंने।"

"आप भी सुर में सुर मिला रहे हैं ?"

"मैंने तो बात पर बात कही।"

"वही पाथर-पट्टी, पाथर-पट्टी करके चारो ओर झील-पोखर की सफाई के काम में पगलाये दौड़ रहे हैं। अच्छा! आप ही बताइये, पत्थर पा भी गये तो क्या हो जायेगा ?-लड़के इतना समझाते हैं···।"

"क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं—'बापू, इसका कहीं कोई प्रमाण तो है नही। कौन तुम्हें कब्जा करने देगा ?' मगर वह मानते ही नही।"

"मानते ही नही।"

"ना।"

प्रौढ़ा के गालों पर आँसू ढुलकने लगते हैं। वह गहरी यातना मे भरे

स्वर में कहती हैं—"मोलबुनी में रेलवे स्टेशन है, पोखरी लो या चाँद-गेड़या सभी जगह ऊँची जाति के लोगों के पास धन है। इस ओर सारे उड़िया ब्राह्मणों की बस्ती है। हमारी जात के लोग कोई भी इस इलाके में धनी नहीं हैं। हम लोगों में से सिर्फ दिगंबर मालवैद्य ने थोड़ा पैसा कमाया है। वह भी जब हरी के बाप ने बहुत कोशिश करके उसको व्यवस्था कर दी तब।"

"उन्होंने व्यवस्था की थी!"

"हाँ हाँ! दूसरे के लिए वह चारों ओर दौड़-भाग कर सकते हैं, मगर अपने लिए कुछ नहीं कर सकते। बच्चों को मार-पीट कर स्कूल मैंने भेजा। उस बारे में उनके मुँह में जुबान नहीं है। अच्छा कर रही हूँ, बुरा कर रही हूँ। कोई जवाब नहीं।"

"आपके दो बेटे काम कर रहे हैं न?"

"उन्हीं भुवन सत्पथी बाबू ने किया। वह भी जेल गये थे। बाद में पेंशन मिली। और भी बहुत कुछ किया। बोले, "मैं जबर्दस्ती तुम्हारे बेटे को नौकरी दिलाऊँगा। भाई साहब कुछ नहीं करेंगे और तुम लोग भूखों मरोगे।" हरी को भी उन्होंने ही नौकरी दिलाई। कुंजलाल को भी स्कूल में मास्टरी दिलाई। बेचारा अगर पाँच-दस साल और जिंदा रह जाता तो हमारे खगलाल और बगड़ीलाल को भी रोजी दे जाता। मगर मेरी किस्मत ही बुरी है।"

"भुवन बाबू अब नहीं रहे शायद?"

"यही पिछले साल सिधारे हैं। पर इसे लेकर भी कितनी अशांति की इस आदमी ने? हमेशा जंगली बैल की तरह रस्सी तुड़ाते रहते हैं। कहते हैं—"मैंने थाने के ऊपर झंडा फहराया। पाँव में गोली लगी। कितने माह जेल में रहा। मुझे देख, किस तरह रह रहा हूँ? और भुवनबाबू जैसों को देख, जमीन खा गये हैं, पेंशन भी खा रहे हैं। कितना था, कितना और हो गया। फिर भी कितनी लालच! स्वाधीनता दिवस की मीटिंग करेंगे, माला पहनेंगे और झंडा फहरायेंगे। जाओ, फहराओ झंडा। अब तो कोई खतरा नहीं है। जब खतरा था तब जान पर खेलकर थाने पर [illegible] दिया। अब तो सभी दूध के धोये हैं। आजकल झंडा फहराना

करने जैसा काम है।' हाँ बाबू, ऐसे ही सबसे बोलते हैं।"

"आश्चर्यजनक साहस की बात है।"

"हाँ बाबू, इसी के बल पर तो भुवन बाबू को भी जो-सो कह डालते थे। हरी और कुंज ने नौकरी की। वे चाहते थे, इसीलिए तो। अब मुझे कहते हैं—'तूने क्यों नहीं रोका?' मैं कैसे रोकती भला? मुझे कहते हैं कि मुझसे सीधे-सीधे नहीं करवा सकी तो अब मेरे नाम पर घूस खा रही है। बेटों को गाली देते हैं कि "तुम्हारे मुँह में मूत दूँगा, सालो। तेरी नौकरी इस बात पर हुई कि तू अमुक माल' का बेटा है। बाप ने तो कुछ लिया नहीं जीवन-भर और तुम सब गये तीन पैसे की नौकरी लेने! छि.!"

"अद्भुत?"

"कहते हैं—'जितना भी जेल जाऊँ, जितनी गोली खाऊँ, जात के कारण मुझे नीचे ही ठेला गया। माल का बेटा बना भी तो पिउन और प्राइमरी-मास्टर। उनके घर का हरी की तरह आठवीं पास लड़का भी ठेकेदारी का लाइसेंस पा जाता, कुंज की तरह का लड़का भी कम-से-कम बैंक में किरानी हो जाता।' "

"ठीक ही कहते हैं।"

"हाँ, और कहते हैं—'पायर-पट्टी निकलते ही मैं राजा बन जाऊँगा, देखना तुम लोग।' आप ही बताइये बाबू, अब सारी जमीन तो दूसरों के कब्जे में है, कौन इन्हें दखल करने देगा? मगर सुनते ही नहीं। यही बातें करते हैं। उनके चेले खुशी से नाचते हैं। कहते हैं—'हाँ बाबू, तू राजा बनेगा, हम सब नाच करेंगे।' "

"चेले कौन?"

"जितने भी संथाल, शबर और भूमिज हैं सब उनके चेले हैं। बहुतों की मदद की है। पंचायत में जाकर उनका काम करवाते हैं। झील की खुदाई करने को इसीलिए तो सब जुटे हुए हैं। फिर खुश होकर हँसते हुए कहते हैं—'हरी की माँ, पेंशन नहीं ली। कोई सुविधा नहीं ली, इसीलिए तो जो कुछ कहता हूँ सब करने को तैयार रहते हैं। मेरी एक बात भी नीचे नहीं पड़ती।"

"ऐसा कहते हैं ?"

"मैं भी कहती हूँ—देखो, वे तो अभी से तुम्हें राजा का मान दे रहे हैं। कहना ही पड़ता है। और क्या खुशी। मुझे ही बताते हैं कि कब उनके पुरखे राजा थे, क्या-क्या किया था। मैं सुनती हूँ। लड़के नाराज होते हैं। "बापू तो पागल हैं ही, तुम भी ऊपर से मुलम्मा चढ़ाती हो।" और लड़कों की बात पर हामी भरती हूँ तो बाप नाराज। बाप की बात पर कान देती हूँ तो लड़के नाचते हैं मारे गुस्सा के।"

"सच ! आपकी तो दोनों ही स्थिति में हैरानी है।"

"सबसे ज्यादा गुस्सा करते हैं अगर कोई कुछ देने आता है। पहले तो मान-पत्तर को लेकर नाराज थे। गरीबों को पचायत की जमीन बँटवा रहे थे। मैंने बाबू लोगों से कहा था वह तो राजा बनकर बैठे हैं, प्रजा को लेकर ही मस्त हैं। उन्हें खेती-बाड़ी के काम में लगाना मुश्किल है। मगर इसी बात पर···।"

"किससे कहा था आपने ?"

"पारटी के जो बाबू आते हैं उन्ही से। यहाँ तो सभी आते हैं।"

"उन्होने क्या कहा ?"

"कहा क्या। एक दिन उन्हे एक कागज पकड़ाया। कहा—'आपके नाम पाँच बीघा जमीन मंजूर हुई है।' बस ! उनको जो फटकार, मुझे जो धमकी और मान-पत्तर को लेकर लड़को की जो दुर्गत बाप रे ! कल खगा-बगा को लेकर चले गये।"

"फिर वापस आ जाएँगे।"

"क्या पता। मुझे तो कितनी गालियाँ सुनाकर गये हैं। सकुनी, बाँझिन, क्या नही कहा।"

"यह कैसी बात ! आप तो···?"

प्रौढ़ा ने इनकार में सिर हिलाया। बोली, "बड़ी बहू के जिंदा रहते ही, मुझे ले आये। छह साल में चार बेटे हुए, सब मर गये। कोई कह नही सकता था कि इस घर में दो सौतें हैं। कोई झगड़ा नही था। हरी की उमर सात भी पूरी नही हुई थी, बगा की उमर चार महीने से ज्यादा नहीं थी। आँखें मेरे चेहरे पर टिकी थी और आँसू बहते जा रहे थे। चारों बेटों को

चिपटाकर मैंने कहा था—'दीदी, मैं सभी को सँभाल लूँगी' ।"

"ये आपके नहीं है'''मैं तो समझ नहीं पाया था ?"

"आप कैसे समझते बच्चा ? ये लड़के ही नहीं समझते । सभी मेरे हाथ के पाले-पोसे हैं। लड़के कहते हैं घर काकभी बँटवारा हुआ तो एक हिस्सा माँ का रहेगा। वे कहते हैं—'कुछेक साँप छोड़ जाऊँगा, बाँट लेना।"

"साँप लेकर आप क्या करेंगी ?"

"उनका क्या, जो मुँह में आया, कह दिया। लड़के माँ-माँ करते हैं तो भी चिढ़ जाते हैं। कहते हैं, 'उसकी चिंता मैं करूँगा। तुम्हें क्या ?"

"आपकी चिंता करते हैं ?"

"हाँ, खूब। उनसे मिलने तो कितने ही लोग आते हैं। कोई बड़ा अफसर इस तरफ आता है तो भेंट करके ही जाता है। सभी के सामने मुझे बुलाते हैं और कहते हैं—"मैं जैसी हूँ, मेरी बहू भी वैसी ही है। हमारे अंदर कोई पालिश, कोई दिखावा नहीं है।" वे हँसते हैं। ये सभी बातें आप लिखियेगा। मगर इस बार मन बड़ा दु.खी है।"

"हाँ, वह तो है।"

"बहुएँ भी नहीं जानती कि मैं विमाता हूँ। उनकी वही बात कलेजे में चोट कर गई है। तुम तो मानी गुणी थे। मैं थी गरीब की बेटी। उन दिनों तुम्हारा नाम-धाम भी था। जेल से छूटे, तो कितना मान-सम्मान मिला। तुम्हारे घर में बहू थी। फिर भी तुम मेरे बाप के पास गये, मुझे माँगकर घर में ला बसाया। अपनी पुरानी पत्नी से कहा, 'वह मुझे नहीं मिलेगी, तो मैं जिंदा नहीं रहूँगा।' मैंने जितना हो सका, तुम्हारी और परिवार की सेवा की, तुम्हारे बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा कर दिया, गृहस्थी की गाड़ी ढोती रही। फिर भी तुमने मुझे इतनी बड़ी बात कह दी।"

"सच, बड़ा अन्याय हुआ है।"

"मेरा मन करता है अपनी जान दे दूँ। पर वह तो मानी आदमी हैं, उनका मान रहेगा ? बच्चा, आप उनसे कहियेगा—"आप जाकर अपनी बात वापिस ले लीजिए। फिर आपको हरी की माँ का मुँह देखने की

जरूरत नही है, ।"

"आप भी मेरे साथ चलिए न ?"

"ना बाबा ! अपनी प्रजा के साथ राजा जहाँ हैं, वहाँ मैं दासी-बांदी क्या करूँगी जाकर। मेरा काम है घर में खटना। इसीलिए मुझे लाये थे। रुकिए, रोशनी करती हूँ। ससुराल से खाने-पीने के चीजें लाया है हरी। कुंजलाल कल सवेरे आयेगा। उसकी सास समझदार है। सब कुछ अच्छी तरह सँभालकर भेजा है। पूड़ी, तरकारी बड़ा, बड़ी, खीर क्या-क्या है सब ? उनको पता है कि मेरे घर अतिथि आये हैं।"

"अरे हरी !"

"यहाँ जो भेजा है उसे क्या देख रही हो ? झापापाड़ी तो बँहगी पर लाद-लाद कर खाने की चीजें गई है। मेरे बाप के बायें पैर की कानी उँगली में जितनी बुद्धि है उतनी भी मेरे ससुर के पास नही है। झापाबाडी जाते समय बापू मेरे ससुर को कहते गये थे—"देखो दिगंबर ! जो भी तुम्हारा ठाट-बाट है, जो तुम अफसरों को न्योता देकर यह सब भंडारा कर रहे हो, सब तो मेरा ही किया हुआ है। मैं एक खास काम से झापाबाड़ी जा रहा हूँ। वही पर जो भेजना हो, भेज देना। और देखो, ऐसे, हिसाब से भेजना कि मेरे साथ और भी पाँच जनों का पेट भर सके। हमेशा से थाना को खिलाते आये हो, अफसरों को खिलाते आये हो, इस बार मेरी प्रजा को खिलाओ।"

हरी की माँ के चेहरे पर इतनी देर बाद हँसी फूटी। बोलीं, "चलो अच्छा है। खाने-पीने की इतनी चीजें देखकर मन बड़ा खराब हो रहा था कि वे पता नहीं क्या खायेंगे। तेरे बाप को खाने की खट्टी-मीठी चीजें पसंद है।"

"तुम्हारे लिए भी तो दिया है ?"

"ओह ! दाँत माजने के मंजन जितना।"

हरीलाल ने बताया कि रास्ते मे मंगल दादा से भेंट हुई थी। वे ही सामान ढोकर लाये। कहा कि आज बैलगाड़ी का जुआ ठीक करेंगे और कल साँपों की पिटारियाँ ले जायेंगे।

"वह जगह कैसी है रे हरी ?"

"बहुत अच्छी।"

रात में भगीरथ कोठे पर सोया। शशांक बाबू को पता चलेगा तो ताज्जुब करेंगे। मगर भगीरथ यह सोच कर-चकित हो रहा है कि शशांक बाबू ने ऐसे विचित्र और प्रसिद्ध आदमी की चर्चा क्यों नहीं की ? शशांक-शेखर भंडारी इसी जिले के रहनेवाले हैं। उन्होंने भगीरथ को आस-पास की कुछ जगहों पर भेजा जैसे शिलदा, बेलपहाड़ी—पर गणपति माल की चर्चा कभी नहीं की। आश्चर्य, क्या शशांक बाबू, इनके बारे में सचमुच नहीं जानते ?

शशांकशेखर भंडारी अत्यंत प्रखर मंतव्य रखनेवाले विशिष्ट व्यक्ति हैं। सभी विषयों पर उनके मंतव्य बड़े ही सारगर्भित और परिष्कृत होते हैं।

"देखो भगीरथ, बंगाली को उसकी संकीर्णता मार रही है। उसके विचारों की दौड़ ज्यादा लंबी नहीं होती। अपना जिला, अपना गाँव, अपनी जाति—इन्हीं को लेकर घमंड में मतवाला बने रहना बहुत खराब बात है। पूरी-पूरी संकीर्णता है।"

"अपने गाँव, जिला आदि के प्रेम का ही तो बड़ा रूप स्वदेश प्रेम होता है।" भगीरथ का तर्क था।

"देखो भाई भगीरथ, मेरे हिसाब से देश-प्रेम एक भयानक चीज है। देश को लेकर ही मत बैठे रहो, पूरी दुनिया की बात सोचो।"

"कौन-सी दुनिया, सर ?"

"'कौन-सी दुनिया' माने ? वही दुनिया जो नारंगी की तरह गोल होती है और जो उत्तर तथा दक्षिण की ओर थोड़ी चिपटी होती है और कौन दुनिया ?"

"पर सर, आपके पास जो कागज-पत्र आते रहते हैं, उनमें तीसरी दुनिया का भी जिक्र है। इसका तो मतलब यह हुआ कि इस नारंगी जैसी गोल दुनिया में ही एक से ज्यादा दुनियाएँ हैं।"

"तुम इन सब झमेलों में पड़े बिना उस एक नारंगी जैसी शक्ल वाली दुनिया के बारे में ही सोचो, वर्ना अपने जिला और अपने ग्राम, बीरेंद्र शासमल, खुदीराम और मातंगिनी हाजरा के बारे में सोचते-सोचते तुम्हारा

दिमाग इतना ठस हो जायेगा कि उसमें और कोई चीज ठुकेगी ही नहीं। समझे ?"

इसी तरह के विचारों वाले व्यक्ति हैं शशांक बाबू। यह स्वाभाविक ही है कि वे भगीरथ से गणपति माल की चर्चा न करें। सवेरे हरीलाल के साथ विदा होते समय प्रौढ़ा ने दुबारा याद दिलाया कि उन्होंने जो बातें कही हैं, उन्हें वह जरूर लिखे। और घर वापिस जाते समय एक बार मिलता हुआ जाय। 'बहुएँ होंगी, आपका सेवा-यत्न होगा ठीक से। अगर जाड़ों में आयेंगे तो हरीका बेटा या खगा-वगा में से जो भी होगा चिड़िया मार लायेगा। बड़ा स्वाद होता है। खाकर देखिएगा। आप जैसे बड़े घर के विद्वान लड़के को गिलास में चाय देना पड़ा। बड़ा खराब लगा। बुरा न मानियेगा।'

"क्यों माँ ! कप तो हैं घर में ?"

"अरे हट ! उतनी-सी चाय भला दी जाती है किसी को ? और मुझे काँच की चीजें छूने में डर लगता है कि कहीं टूट न जाय।"

"अच्छा माँ, मैं बाबू साहब को छोड़ के आता हूँ ?"

"अच्छा ! अरे ! यह क्या ! यह क्या कर रहे हैं आप ?"

भगीरथ के प्रणाम करने पर यह प्रतिक्रिया हुई थी। फिर उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर सिर से लगाया और बोली'—"यह क्या किया ? मेरे पाँव छुएँ आपने ? मुझे पापिन बनाया।"

भगीरथ और हरीलाल साइकिल पर सवार होकर निकल पड़े। हरीलाल ने कहा—"मेरी माँ बच्चों की तरह है। सीधी-सादी। बापू यह बात समझकर भी नहीं समझते। जो मुँह में आता है बोल जाते हैं। उन्होंने माँ को जो विमाता कहकर गाली दी, वह बात उन्हें खल गई है। मैंने माँ के पाँव पकड़कर कहा—'हम चारों भाई तो आपको ही अपनी माँ समझते हैं, फिर भी माँ को शांति नहीं हुई। बापू जब तक उन्हें नहीं मनायेंगे...'।"

"हेडमास्टर के लड़के ने आपके पिता को पत्थर की पटिया की बात बताई है क्या ?"

"हाँ, यह भी अच्छा मजाक है !"

"उनका नाम क्या है ?"

"ठहरिये, बताता हूँ…अच्छा-सा नाम है…अभी याद नही पड़ रहा है।"

"हेडमास्टर का क्या नाम है ?"

"प्राणकृष्ण भंडारी।"

"भंडारी ! ठीक जानते हैं ?"

"हाँ, अच्छी तरह जानता हूँ।"

"लड़के का नाम क्या शशांक शेखर भंडारी है ?"

"हाँ-हाँ, यही नाम है।"

"क्या वे पोखरी के रहनेवाले हैं ?"

"नही, किसी और थाने मे है उनका घर। शायद रगड़ा की तरफ है उनका गाँव। इधर बहुत दिनो से हैं।"

"शशांक बाबू यहाँ आते हैं ?"

"नही, दस-बारह साल से इधर नही आये। कोई सम्बन्ध नही रखते है। हेडमास्टर साहब बहुत दुखी रहते हैं। हेडमास्टर साहब की पत्नी मरी तो उन्हे खबर भेजी गयी। फिर भी गाँव आकर उनके क्रिया-करम में शामिल नही हुए। कहवा दिया—"मैं इन बातों मे विश्वास नही करता। वह सब मैं नही कर पाऊँगा।" क्याआप उन्हें जानते है ?

"हाँ।"

भगीरथ को बहुत आश्चर्य हुआ। क्या नारंगी के आकार वाली उनकी दुनिया इतनी छोटी है ? यह कौन-सी दुनिया है ? जिस गणपति माल से वह मिलने जा रहा है, अपने गौरवमय अतीत की खोज कर रहा है।

कभी सुदूर अतीत में कोई भूस्वामी माल जाति के लोगों से उपकृत हुआ था और गणपति के पुरखों को पाँच गाँव की जमीन दान मे दी थी और उन्हें राजा की पदवी दी थी।

वह बाहर से आया हुआ आततायी कौन था ? कोई दूसरा भूस्वामी था या और कोई दूरागत आक्रमणकर्ता ? वह कौन-सा युग था जब इस उपेक्षित झारखंड का कोई कोना अनधिकृत था ? जहाँ सिर्फ झिनाई नदी थी, जगल था और कुँआरा प्रांतर था।

वहाँ गणपति के पुरखों ने किन्हें बसाया ? झील का नाम है मालदीघी

और मनसा के थान पर पूजा का प्रथम अधिकार माल जाति का है। इन चीजों के पीछे इतिहास का कौन-सा पन्ना छिपा हुआ है?

और शशांक भंडारी ने कभी उसे गणपति माल और इस अंचल के बारे में नही बताया। ग्राम-जिला और जाति की चिंता करना उनके लिए संकीर्णता है।

फिर भी किसी दिन गणपति माल के भीतर आग उन्होंने ही जलाई। आज जो उनके लिए 'संकीर्णता' है उसी प्रकार की चिंता की आग उन्होंने पहाड़-वन के इस उदारमना व्यक्ति के मन में जगा दी और फिर अपनी बड़ी और विस्तीर्ण दुनिया में लौट गये।

हरीलाल ने जैसे भगीरथ के विचारों को भाँप लिया, बोला माना कि पंचग्राम आज भी हैं, पर चादगेड़ या और झिनाईगेड़या में किसी भी शवर, संथाल और भूमिज की जमीन नही है। इन दिनों पिछले कुछ बरसों में घर बनाने की जमीनें कुछ लोगो को मिली है, मगर खेती की जमीन अभी किसी को नही मिली है। मोलबूनी का नाम था महुलबूनी। वहाँ पर आज एक भी महुल (महुए) का पेड़ नही है। बापू तो पागल हैं। पागल को कौन सामझाए?

"हाँ, यह तो है।"

"झापाबाड़ी में शवर रहते थे। वे अब बिखर कर इधर-उधर चले गये हैं। सरकार ने उनके लिए कालोनी बनवाई थी। कोई खास नही थी, जैसे-तैसे करके कुछ कमरे बनवा दिये थे। बापू, इनको ले जाकर कहाँ बसायेंगे, वही जानें। शवर बापू को मानते है।"

"ये किनके मकान हैं?" सामने के कुछ घरों की ओर इशारा करके भगीरथ ने पूछा।

"ब्राह्मणो के।"

"वे क्या झील की मिट्टी कटवा रहे है?"

"प्रधान भी बापू को जानते हैं। बापू देखते हैं कि सूखा के नाम पर अंचल मे सरकारी पैसा आ रहा है। बहुत सालो से वह पुरानी झील और तालाबो को खुदवाने के काम मे लगे हुए है। बापू कहते हैं कि पुराने मठे हुए जलाशयों को खुदवाना बहुत अच्छा है' बापू भी लेबर लगाते हैं

इस काम में।"

"यह तो अच्छा काम है।"

"हमारा-आपका जिसमें भला है, उसी में क्या बापू भी अपना भला मानते हैं? यह जो मंगल ने कहा है कि झापाबाड़ी खूब अच्छी जगह है, उसका मतलब समझे आप?"

"क्या मतलब है?"

"पुरानी झील है न! किनारों से, टूटे-फूटे घाटों से बापू ने साँप पकड़े हैं।"

"अच्छा।"

"लगा-बगा भी बापू के चेला हैं।"

"साँप आप बाहर क्यों भेजते हैं? चमड़े के लिए?"

"ऐसा फिर मत कहियेगा, वर्ना बापू आपको भी मारने दौड़ेंगे। वह साँप मारकर चमड़ा नहीं बेचते। जहरीले साँप का जहर शायद दवा के काम आता है।"

"आपको सारी बातें नहीं बताते शायद?"

"नहीं। मैं और कुंज उनके कुपुत्र हैं न! उनका कहना है मैं किसी की दया नहीं लूँगा। इसी से उनका सिर ऊँचा है। इसी से लोग उनकी बात सुनते हैं।"

"ऐसे लोग कहाँ हैं आज की दुनिया में?"

"जानता हूँ। पर पीठ पीछे तो सभी बापू को पागल ही कहते हैं। अंचल के कितने ही कामों में, कमेटियों में उनका नाम रखा गया, पर वह किसी काम में हिस्सा नहीं लेते। कहते हैं—"जहाँ भी जाऊँगा, लोग मुझे गणपति माल नाम से ही लेंगे। ऊँची जात वालों को जो मान मिलेगा, वह मुझे तो नहीं देंगे। मैं मान के साथ रहूँगा। इसलिए उन झमेलों से दूर ही रहूँगा।"

"राजाओं जैसी तबीयत पाई है उन्होंने।"

"लीजिए, आप भी उनकी ही लाइन पर चल रहे हैं। वह तो कहीं रहे हैं कि वे राजा हैं। पत्थर-पटिया मिलते ही दूसरे भी उन्हें राजा मानेंगे। देखिए, वह रही झापाबाड़ी। यहाँ से पैदल चले जाइये। मुझे देख

लेंगे तो जो हाथ में होगा उसी से मेरी धुनाई शुरू कर देंगे, समझे ? आप बगा से चुपके से कहियेगा कि उसका बड़ा भाई उधर बैठा है। मिलने को कह दीजियेगा। कहियेगा, मां बहुत रो रही है।"

"उसकी उमर क्या होगी ? कैसे पहचानूंगा ?"

"मेरी उमर होगी अट्ठाइस, कुंज मुझसे तीन साल छोटा है और खगा-बगा उससे पांचेक साल छोटे होंगे।"

"क्या वे जुड़वां हैं ?"

"हां, खगा खूब लंबा-चौड़ा है और उसके बाल एकदम भेड़ के बालों जैसे हैं। दोनों ही बापू के चेले हैं।"

भगीरथ ने कांपते कलेजे से निदिष्ट दिशा में चलना शुरू किया।

तीन

हरीलाल ने उसे यह नही बताया था कि झापाबाडी कैसी जगह है। प्राचीन महल या देवालय भी कोई देखने लायक जगह होती है, शायद इस बात का हरीलाल को पता भी न हो। भगीरथ को भी पहले नहीं मालूम था, पर शशांक बाबू के साहचर्य और इन चीजों के पीछे पागल करुणामय दीक्षित की लिखी समीक्षायें पढकर उसकी आँखें थोड़ा खुल गई है। अब वह इन चीजों के सौन्दर्य का थोड़ा पारखी हो गया है।

फलस्वरूप उसने वहाँ जो देखा उसपर मुग्ध हो उठा।

वहाँ एक छोटा-सा पत्थर का बना मंदिर था, जिसकी दीवारों और गुंबद पर अत्यंत सुंदर नक्काशी की हुई थी। उससे थोड़ी दूर पर एक विशाल वट-वृक्ष था। इतना बड़ा बरगद का पेड़ आजकल कम ही दिखाई पडता है। थोड़ी दूर पर बहुत-से लोग बैठे अंतहीन वार्ताओं में डूबे हुए थे। थोडा आगे जाते ही पत्थर के चार स्तंभ दीख पड़े, जिनकी जड़ें चारों ओर से पक्की थी और वहीं से सीढ़ियाँ चली गई थी नीचे तक। भगीरथ

कल्पना करता है कि उन स्तंभों के ऊपर कभी पत्थर का चंदोवा रहा होगा। निश्चय ही ऐतिहासिक मालदोषी है। इसी को खोदवा रहे हैं गणपति माल।

थोड़ा और आगे जाते ही दीख पड़े गणपति माल। उन्हें देखकर पहचान लेना मुश्किल नहीं था। जितने लंबे उतने ही चौड़े। बाल एकदम सफेद। रंग तांबे जैसा। हाथों में सांप-दांप नहीं थे। कमर में काछनी। बहुत से आदमियों के साथ वह झील के अंदर से ऊपर की तरफ आ रहे थे। दो-तीन बाबू-नुमा लोगों को धमकी जैसे स्वर में समझा रहे थे।

शायद धमका नहीं रहे हैं! शायद यही उनके बोलने का ढंग है। छाती पर हाथ मार कर कह रहे हैं—"प्रधान के साथ मेरी बात हुई है। पचास फुट मिट्टी काटी जायेगी। यह मेरी जिम्मेवारी है। समझे?"

बाबुओं ने मिनमिनाते हुए कुछ कहा।

"मैं तो उतने ही पैसों में और गहरा करा लूंगा। कितने ही सालों की कोशिश के बाद इस झील का उद्धार हो रहा है। और तुम कह रहे हो तीस फट काटकर छोड़ दीजिये।"

"नहीं ऐसा तो नहीं कहा मैंने।"

"बाबू, पंचूलाल। तुम तो बस यहीं एक बार पधारे हो यहां। फिर यहां पांव नहीं रखोगे, मुझे पता है। तो काम में टांग अड़ाने आये हो क्या? या कि यह देखने आये हो कि मैं कितना दो-नंबरी बना रहा हूं? एं? क्यों आये हो?"

"भाई साहब! मुझे देखने के लिए कहा गया था। आप लोगों का काम देखकर ही तो कुछ सीख पाऊंगा।"

"क्या सीखोगे तुम? तुम लोगों को मैं सिखा भी क्या सकता हूं? मैं तो यहां आकर काम में डूब जाता हूं। और जो लोग सभी कामों में गरीब का पेट काटते हैं उनकी शिक्षा तो पा ही चुके हो। उनके साथ मेरा क्या मुकाबिला? जाओ, जाओ यहां अशान्ति मत करो।"

"क्या यह सब खोदाई में मिला है?"

"क्या यह गणेश और मनसा की मूर्तियां? हां, झील में से निकली हैं। इनका मंदिर बनेगा। शहर में ले जाकर बेच लोगे, ऐसा नहीं करने दूंगा

में।"

"छि: ! छि: ! यह क्या कह रहे हैं ?"

"बेणी बको मत। सांप छोड़ दूँगा ऊपर। चल रे पंचूलाल, छाँह में में बैठते हैं।"

सभी बरगद के पेड़ की तरफ बढते हैं। पंचूलाल ने मुस्कराकर कहा —"और आप जो साँप पकड़कर बेच रहे हैं ?"

"बेचूगा नही। ठीक है, झांपावाड़ी के चार सांप तुम्हारे घर मे छोड़ आता हूँ।"

"माफ कीजिए।"

"दवा बनती है दवा, समझे ? सांप को क्या यों ही पकड़ते है ? जो जहर आदमी को मारता है उसी से उसकी जान बचती है। यह सब तुम नही समझोगे।"

भगीरथ ने आगे बढ़कर प्रणाम किया।

"आप कौन हैं? पहचान नही पा रहा हूँ। इस अंचल के तो नही लगते आप ?"

"खुदीराम महातो ने आपके नाम चिट्ठी दी है"

"कौन मास्ता खुदीराम ?"

सभी बरगद के नीचे बैठते हैं। गणपति चिट्ठी पढ़ते है। फिर बोलते हैं, "अच्छा ! तो आपको भेजा है ?"

"मुझे 'आप' न कहें।"

"नाम क्या है ?"

"भगीरथ जाना।"

"अच्छा।"

मिट्टी-सने लोगों की तरफ देखकर गर्व से गणपति बोलते हैं। "सवेरे नीलकंठ देखा था। क्यो रे मंगल ! कहा था न कि आज का दिन अच्छा जायेगा ?"

"हाँ राजा, कहा था।"

"देखो न, तक्षक नाग मिला आज। ओह ! क्या सुलक्षण सांप है ! अमृत कविराज जिंदा थे तो ऐसे सांप के पित्त से, मद्दा रोहूँ माछ के पित्त

से जलाकर दवा बनाते थे। दवा का नाम था—सूचिकाभरण। मरने वाले रोगी को अक्षा चावल की नोक से उसके वरमंड तालू को छेद कर सुई के सिरे पर जितनी दवा आती थी उतनी ही चिरी हुई जगह में लगा देते थे और रोगी उठ बैठता था।"

"साँप खूब फुफकार रहा है।"

"फुफकारने दो। दो दिन पेट जलेगा तो फुफकारना कम हो जायेगा ओह! ऐसा नाग हाथ आया। और इन्हें खुदीराम ने आज मेरे पास भेजा। बैठिए···बैठो न।"

"ये कौन हैं?"

"खूब विद्वान लड़का है। इस पंचूलाल की तरह नहीं कि एक अंग्रेजी चिट्ठी आ जाय तो यहाँ-वहाँ पढ़वाने के लिए दौड़ लगाने लगता है। बेटा, गोबर।"

पंचूलाल हँसने लगता है। इससे लगता है उनके मुँह से ऐसी बातें सुनने के वे आदी हो चुके हैं।

"ये मेरी जीवनी लिखेंगे। सारी बातें किताब में छपवा दूँगा।"

"हमारी बातें भी लिखेंगे न?"

"तुम लोगों की बातें पहले लिखाऊँगा। अब जा बेटा, काम में लगजा सब। गणेश निकले, मनसा निकली, अब पटिया निकल जाय, बस। पटिया निकलेगी तो हम सब माँस-भात खायेंगे।"

"खसी कहाँ से आयेगा?"

"पंचूलाल देगा। क्यों पचू? है न वादा?"

"हाँ भाई साहब, वादा पक्का है। पटिया निकलेगी तो आप राजा होंगे। तब खसी दूँगा, चावल दूँगा। क्या है! कह तो सकूँगा क्या-क्या किया। फिर आप गाली गुप्ता मत कीजियेगा, सिर्फ इतनी विनती है।"

"ठीक है। अब यहाँ से फूट लो। मैं हूँ यहाँ। तुम्हें काम देखने की जरूरत नहीं। काम अच्छा ही होगा। अरे ओ लड़के! क्या नाम है तुम्हारा?"

"भगीरथ जाना।"

"भगीरथ! भगी-रथ! मैं तो मूर्ख आदमी हूँ, माल का बेटा। नया

नाम जीभ पर चढ़ता ही नहीं । हाँ, तो भगीरथ, यह जो पंचूलाल है न, इसका बाप मुझे भैया कहता था । इस बेटा को जब से यह नंगा घूमा करता था तब से सिखा रहा हूँ मुझे ताऊ कहा कर । पर यह हमेशा भाई साहब ही कहता रहा । अब पंचायत में घुस गया है । दो सौ आदमी काम कर रहे हैं । यह पैसे देने आता है । लड़का अच्छा है । दूसरों के सामने लाठी भाँजता है, पर मेरे पास आते ही विष्णु के पास गरुड़ जैसा हो जाता है। "

पंचू फिर हँसता है ।

"चलो, जाओ अब तुम लोग । सुनो लड़के, कह सकते हो यह किसका लिखा है :

तदनंतर झननन पवन स्वनन,
मत्त वेग से आँधी आई वायु प्रभंजन ।
दिगंबर माली कहे आगे आओ,
शत्रु सेना तितर बितर, पीछे-पीछे धाओ,
सन सन गोली चले, सन सन तीर,
काँपे माता वसुमती सर्वांग में रुधिर ।

क्या ? नहीं बता सके न ? इसी गणपति माल की कविता है । हाँ, झापा-बाड़ी में हम लोगों ने सन् बयालीस में खूब जमावड़ा किया था । फिर लड़ाई भी हुई थी । तब थाना पोखरी में था गोली भी चली थी, तीर भी चले थे । दिगंबर माली ललकार रहा था । और अब, बाबू लोग कहते हैं··· ।

"आपने लिखी थी यह कविता ?"

"हाँ लिखी थी । छपा भी दी । तो मुरारी बाबू बोले—'गणपति कर क्या रहे हो ? सभी जानते हैं यह लड़ाई अहिंसात्मक थी ।' मैंने भी जवाब दिया था—'तब तो तुम भी कछोटा मारकर दौड़े थे, भैया । जो देखा था वही लिखा है ।' छपाया भी था और बँटवाया भी था । अभी मगर सुनाने का वक्त नहीं है ।"

"मुफ्त बाँटा था ?"

"लो पकड़ लिया न तुमने । नहीं-नहीं, सबसे एक-एक आना लिया था । तब आनों में हिसाब चलता था । क्यों न लेता ? भास्ता के बाप ने

लिखना-पढ़ना सिखाया था। मैंने कष्ट उठाकर पढ़ाई की, कष्ट उठाकर कविता लिखी, उँगली तो चलती न थी। फिर छपाई और कागज के पैसे खर्च किये। तो क्यों बेचता, बोलो ? किसी तरह जीना है इस दुनिया में। क्यों लड़के, बोलो।"

"जरूर।"

,'ठीक है। अच्छा ! रुको। खगा-बगा को बुलाता हूँ। खगा रे ! बगा रे ! एक मिनट रुको, आता हूँ।"

"कहाँ है वे लोग ?"

"उस तरफ।"

"मैं देखता हूँ।"

भगीरथ आगे बढ़ गया। उसने देखा खगा और बगा बाल्टी में पानी लेकर सन के गुच्छों से दो मूर्तियों की धुलाई कर रहे थे। पत्थर पर मनसा और गणेश की मूर्तियाँ खुदी हुई थी। अलंकारहीन आदिम चेहरे थे उन मूर्तियों के। दोनों ने जिज्ञासु नेत्रों से भगीरथ की ओर देखा।

"खगलाल किसका नाम नाम है ?"

"मेरा।"

"तुम्हारे भैया सड़क के उस मोड़ पर हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं।" वाक्य पूरा होने के पहले ही खगा उधर भागा।

बगा ने कहा – "चलिए देखता हूँ बापू क्यों बुला रहे हैं ?"

"क्यों बुलाया ?" आकर बाप से उसने पूछा।

"खगा कहाँ है ?"

"आ रहा है।"

"पता है भाई के पास दौड़ा गया है। उसका बड़ा भाई इस बाबू को छोड़ने आया था और सड़क के मोड़ पर खड़ा है। मैं क्या समझता नहीं ? वह समझता है आते ही मैं उसे पीटना शुरू करूँगा। तुम लोगों ने मेरे बेटे होकर भी सिर्फ पिटाई देखी, मन नहीं देखा।"

"भैया को बुलाऊँ ?"

"सुना।"

"मारोगे तो नहीं ?"

"यह बात पूछेगा तो तुझे ही पीटूंगा ।"

बगा हँसकर भाग गया।

गणपति ने कहा—"हरी और कुंज माँ के दल में हैं। माँ खगा-बगा के लिए रोती है। तुम आये तो वह कैसी थी ?"

"बहुत दुखी थीं।"

"जानता हूँ। सब समझता हूँ। वे यह भी नहीं समझते कि मैं जो कुछ लेता नहीं, किसी के सामने सिर नहीं झुकाता, इसीलिए इस नंगे कंगाल को लोग मान देते हैं। मान सबसे बड़ी चीज है। औरों की तरह अगर पैसा इकट्ठा करता तो क्या मान मिलता ? यहाँ तो इस पारटी उस पारटी के बीच मारपीट लगी रहती है। पर सभी मुझे मानते हैं। कितनी ही सरकारें बनी, किसी से कुछ माँगा नहीं अपने लिए। इस मान-सम्मान को लेकर तुम लोग रह सकते थे ? नहीं। एक बेटा पिउन बना एक मास्टर। मुझे लिखने में वक्त लगता है। उँगलियाँ चलती ही नहीं। मगर कुंजलाल खसर-खसर कलम चलाता है।"

हरीलाल को खींचकर ला रहे थे दोनों भाई और कह रहे थे—"चलते क्यों नहीं ? उन्होंने कहा है मारेंगे नहीं।"

"अरे हरी ! तू वहाँ क्यों लुका हुआ था ?"

"तुम्हारे डर से।"

"ना: ! अब नहीं मारूँगा।"

"तो घर चलो।"

"घर क्यों जाऊँ।"

"माँ बहुत रो रही है।"

"रो रही है ? मेरे न जाने से क्या बिगड़ेगा उसका ?" उसे तो जमीन मिल रही है। जमीन को लेकर रहे।"

"मना कर दिया है।"

"अच्छा ! तुझे ठीक पता है ?"

"हाँ, जानता हूँ।"

"बहुत अच्छा। तू सब मिलकर उसे बिगाड़ता है। वर्ना तेरी माँ तो मेरी पीले फूलों वाली अतसी का पौदा है। मेरी लक्ष्मी है।"

राजा

"माँ से क्या कहूँगा ?"

"माँ को लेकर चला आ यहाँ।"

"माँ को ले आऊँ ?"

"हाँ, सब यहीं आ जाओ।"

"सब यहाँ ?"

"अब मेरा अच्छा समय आ गया है रे। रोज नीलकंठ देखता हूँ। झापावाड़ी में पत्थर की पटिया जैसे मुझसे बात करती है। माल दीघी में उतरते ही झील ने गणेश और मनसा को ऊपर फेंक दिया।"

"वही गणेश, वही मनसा, जो तुम कहते थे। उस पर कुछ लिखा देखा ?"

"नहीं। हमारे आदि पुरुष समर्जन माल वैद्य ने इसी जंगल में वर्गीयों मारकर भगाया था। धवलदेव राजा का राज्य बचाया था। हमारे आदि पुरुष शिकार करते थे और सांप भी पकड़ते थे। इसी से धवलदेव राजा ने कहा—"पाँच गाँव ले लो।" राजा हुए हम तभी से। पत्थर का गढ़, मनसा का मन्दिर और दीघी (झील) का नाम पड़ा मालदीघी।"

"उन्हीं दिनों ?"

"पाँचों गाँवों में पाँच मालदीघी। सोचकर देखो। अगर माल जाति का राज्य न होता तो ऐसा नहीं होता। झील पर झील काटते गये, पर पानी नहीं निकला। समर्जन माल ने जब अपनी छाती चीरकर रक्त दिया तो पानी निकल आया।"

"मैं समझ रहा हूँ।"

"मैं तो आँख मूँदते ही जैसे भीतर कहीं सब देखने लगता हूँ। वह आदमी चला जा रहा है। अजगरों से भरे जंगलों से को पार करता हुआ। झिनाई नदी पार करता है। नदी के किनारे पर गाँव बसाता है जिससे कुओं और पोखरों में पानी उठे। थोड़ा जंगल काटकर गाँव बसाता, फिर थोड़ा जंगल छोड़कर दूसरा गाँव बसाता, बीच-बीच में जंगल छोड़ता जाता। माल, शबर और सथाल-कोई भी जंगल के बिना जिंदा नहीं रह सकता।"

"मगर आज तो जंगल नहीं है।"

"रहता कहाँ से ? जंगली इलाके में युद्ध कभी रुका ही नहीं। मुगल

आये, पुर्तगाली आये, अँगरेज आये। उन्होंने तरह-तरह की जातियों को घुसा कर हम लोगों का उच्छेद किया।"

"हां, यही लिखा है?"

"इसीलिए तो मैं पत्थर-पटिया खोज रहा हूँ। पत्थर-पटिया तो मिली नहीं, पर यही कह कह कर मैंने इनसे चार-चार सागर जैसी गहरी झीलें खोदवा डालीं। हां लड़के। चार झीलें। जाकर देख लेना।"

"सागर जैसी गहरी झीलें।"

"हां बच्चा। गणपति के बिना इस मरुभूमि में वैसी झीलें नहीं बन पाती। मर गया तो भी यह जानकर मरूँगा कि सूखा-अकाल में 'हाय पानी,' 'हाय पानी' करके ये नहीं मरेंगे। पानी रहेगा तो मेहनत-मजदूरी और खेती करके जी लेंगे। काम की खोज में इधर-उधर भटकना नहीं पड़ेगा इन्हें। पिछले दो सालों से बड़ी तकलीफ में हैं ये सब।"

"झील काटने की इजाजत मिल गयी?"

"बहुत लड़-भिड़कर हां करवायी है मैंने। सैकड़ों हजारों दुखी प्रजा है मेरी। पत्थर-पाटी पाये बिना ही राजा का कर्तव्य करता जा रहा हूँ। सगर्जन से गणपति तक जिससे जैसा बन पड़ा किया। गरीबी में रहे, पर सिर को नहीं बेचा। बाप-दादे भी साँप पकड़ते थे, विष बेचते थे—मैं भी कर रहा हूँ। अरे खगा, मेढक हैं न?"

"हँडिया में भरकर रखा है।"

"बच्चे, चूहे नहीं पकड़े?"

"पकड़े हैं।"

"साधू, मतना, कालू, भाला, टोका को चूहे मिलने चाहिए खाने को।"

"दूसरों को भी ले आऊँ?"

"ले आना।···मगर बच्चा, मुझे यही दुःख है कि तुझ तक ही सब खत्म है। इन बच्चों में वह मिजाज नहीं है। और फिर राजाओं-बाजाओं के दिन भी अब कहाँ रह गये हैं? है कि नहीं?

गंगा यमुना गमित महिमा
काशी देवधाम कौन धरे नाम?

आज गौरव कल ही हतमान,
काल करालिनी, करो अवधान !

कैसा लगा बच्चा ?"

"आपकी ही रचना है ?"

"हाँ साँप के संग रहता हूँ। उन्हें देखता हूँ। मन में कितनी ही बातें उठती हैं। झिनाईगेड्या में करन का परब देखा है ?"

"नहीं।"

"देखने लायक होता है। दिखाऊँगा कभी।"

"यहाँ क्या मनसा पूजा होती है ?"

"मनसा मेला में पाँचो गाँवो के लोग इकट्ठा होते हैं। पंद्रह दिन मेला चलता है। संक्राति पर पूजा होती है। पोटो आते हैं। मनसा का पट दिखाकर गाना गाते हैं। लाखो रुपयों के साँप खरीदे जाते हैं। फिर मनसा मंगल और पाचाली गीत होते हैं यहाँ। देखने लायक होता है। पुरुलिया मे मुखौटे पहनकर लखीदर और बेहुला का पाला नृत्य होता है। इस बार उन्हें लाया जायेगा। खर्चा होगा तो हो। अपने देश की चीज है।"

"बापू ! मैं घर जाऊँ ?" हरीलाल पूछता है।

"जा।"

"माँ से क्या कहूँगा ?"

"कहना बापू सिर्फ नीलकंठ देख रहे है। आज तक्षक नाग भी पकड़ा है। बड़ा सुलक्षणी साँप है। गणेश और मनसा की मूर्तियाँ निकली हैं। अब पत्थर-पाटी निकलनी है। चार में नहीं निकली, तो अब जरूर निकलेगी।"

"माँ को आने को कहूँगा ?"

"जरूर ! पटिया निकलेगी, मैं राजा बनूँगा। कितना नाच-गाना होगा। इसमे तेरी माँ को बगल में लेकर बैठना होगा कि नही ?"

इसी बीच झील के अंदर से जोर का शोर उभरता है। सभी दौड़ पडते हैं। पत्थर की कलश वाला एक छोटा स्तंभ निकल रहा है। गणपति कहते है—"कोई थाना को बताने नही जायेगा। और क्या निकलता है, देखते हैं। गाँव की चीज गाँव में ही रहेगी। लगता है भागते समय यह सब

पानी में फेंक गये थे। चलो बच्चा, नहा कर खा लो।"

"आपके साँप-वाँप ?"

"मनसा देवी के जीव हैं। उन्हीं के मन्दिर मे रख दिया है। लगता है तुम भी साँप से बहुत डरते हो।"

"बहुत।"

"तो मेरी जीवनी कैसे लिखोगे ?"

"शायद डर दूर हो जाय।"

"हाँ, हाँ, डरने की क्या बात है। साँप देखिए..."

"फिर 'आप' ?"

"ओ हाँ। साँप को सुनाई नहीं पड़ता, दीखता भी कम है। एक पल में डरकर काट लेता है। जो साँप से डरता नहीं, उसके पास साँप शिशु की तरह सरल हो जाता है। मैं तो साबू को लेकर सोता था। अब वे अपनी-अपनी पिटारी को पहचान गये हैं।"

"आप सब कर सकते हैं।"

"हाँ कर तो सकता हूँ। बाघ का बच्चा पकड़ा था एक बार। बड़ा करके राजा के घर दे आया। भेड़िया बड़ा पाजी जानवर होता है। एकदम पोस नहीं मानता। चलो, नहा लो। खा लो। खगा-वगा, क्या कहते हो ?"

"एक बार घर जायें हम ?"

"हाँ, जा। माँ को ले आ। कहना बापू बहुत दुःखी हैं। खाना-पीना नहीं कर रहे हैं। चलो लड़के। स्नान करें, खायें। अरे ! हँस क्यों रहे हो? अरे भाई ! खाना-वाना तो जरूरी चीज है। पर उसे भी बोलना जरूरी है कि खाया नहीं। औरतें 'नहीं खाया' सुनकर सबसे ज्यादा तिलमिलाती हैं। लगता है शादी नहीं की, इसलिए ये बातें नहीं जानते।"

"बापू, साँप भी लेते आयें ?"

"ले आओ। चलो, चलो। मणि सत्पथी ने घर छोड़ दिया है। बेटा कीर्तन के पीछे पागल हो रहा है। दो सौ लोगों को खिला रहा है। कोई असुविधा नहीं।"

"मणि सत्पथी के घर कुएँ पर स्नान होगा। उसके यहाँ चटाइयों के

ढेर लगे हैं। दोपहर में मुरमुरे खायेंगे। शाम को भात की व्यवस्था है। मणि की बहू मुझ बहुत मानती है। 'बाबा' कहती है। पाँव छूती है। मणि बहू को बहुत पीटता था। मैंने मणि को पीटकर सीधा कर दिया। अब बहू को हाथ नहीं लगाता। इसी से वह मेरी भक्ति करती है।"

मणि सरखी की बहू ने बड़े प्रेम से पानी छिड़क कर भात, कलाई की दाल और बतख के अंडों की सब्जी परोसी। बोली—"मछली नहीं मिली। आज बाजार नहीं लगता।"

"झील की खोदाई हो जाने दो, मछली भी होगी।"

"किसी को ठेका देंगे?"

"नहीं, नहीं। शबर मछली पालेंगे।"

"ठीक है।"

"वही करेंगे। उनके पास और तो कुछ है नहीं। वे मछली पालेंगे। संथाल लोग झील के किनारों पर कतार के कतार पपीते के पेड़ लगायेंगे। फल-पाकड़ के पेड़ बिना लगाये काम नहीं चलता···झापावाड़ी को माल-भूमी बनाकर छोड़ेंगे। सबको अपने घर के पास महुए का पेड़ लगाना होगा। दो महुए के पेड़ हों और चार-पाँच बकरियाँ, तो कोई भूखों नहीं मरेगा।"

'आप कराएँ तो सब होगा बाबा!"

"हाँ, मैं ही तो कराऊँगा। जरा दाल देना।"

अंत में दाल बड़ा और पोस्ते की चटनी के साथ खाना समाप्त हुआ।

"वाह! खूब खाया। क्यों बच्चा? अब थोड़ा आराम कर लें।"

खा-पीकर गणपति चटाई बिछाकर लेट गये। भगीरथ ने भी उनके पास ही अपनी चटाई बिछायी।

चार

शाम को ये लोग काम से लौटे। गणपति माल ने सभी को नापकर चावल दिया, बोले—"ले एक एक आदमी एक-एक किलो चावल ला।"

बेसिक स्कूल मे विशाल हंडे और कड़ाहियाँ लायी गयीं। उसी में मांड़-भात पकाया गया। भात के पहाड़ जैसे ढेर लग गये। "बच्चा, पहाड़ मत देखो, भूख देखो उनकी। नमक और मिर्चों से ही चुटकियों मे पहाड खतम कर देंगे। सवेरे पानी के साथ भात खाकर काम पर जायेंगे। दोपहर में भूजा खायेंगे। एक किलो भूजा, एक किलो चावल और चार रुपये हरेक को देना होगा। घर से तो कोई दे नहीं रहा। ये क्या यों ही मुझे सींचते हैं। मैं न रहूँ तो पंचायत इन्हें अँगूठा दिखा देगी। देंगे भी कम और दो सौ आदमियों की जगह पाँच सौ दिखायेंगे।

"और यह मिट्टी? यह मिट्टी रास्ते पर, मंदिर के चारों ओर फिकवा ऊँगा। किनारा ऊँचा करूँगा। झील के बीच में कुएँ खोदे गये थे। वे कुएँ दुबारा साफ करके खोद दिए जायें तो नीचे से पानी आयेगा।"

भगीरथ को साथ लेकर, लालटेन, हाथ मे लेकर गणपति झील के तट पर जाता है। विशाल झील थी।

"कभी यहाँ पानी भरा हुआ था।"

"हाँ, था। फिर हो जायेगा।"

"नीचे पानी है?"

"उस पानी से तो काम नहीं चलेगा, बच्चा! किनारे से किनारे तक पानी चाहिए। आजकल किसी काम में पंचायत से 'हाँ' कराने में आदमी की जीभ बाहर निकल आती है। पर सबके के मछलीपालन की व्यवस्था होनी चाहिए, सघाल पपीते के पेड़ लगाने, और भी गाँव आदि के लोगों को खेती के लिए पानी मिले—जो बहुत जरूरी चाहिए। यह झील भरी होनी चाहिए।"

"आप तो सचमुच राजा हैं।"

"क्यों बच्चा मजाक करते हो?"

"नहीं सच कह रहा हूँ।"

"जो आज राजा वही कल दास, क्षण मे उत्थान और क्षण में पतन।"

"जीवनी नही लिखायेंगे ?"

'तुम लिखना चाहते हो ?"

"हाँ।"

"ठीक है। तो फिर जिसकी जीवनी लिखना चाहते हो, उसे कुछ दिन देखो। घबड़ाना मत तुम्हारा वेतन दूंगा।"

"मगर वेतन के रूप में साँप नही लूंगा।"

"नही, नही। साँप तो सब भिजवा दूंगा। कही साँपों का पार्क बना रही है सरकार। यहाँ भी तो बना सकती थी। यहाँ साँप का पार्क बनता तो मैं ही देख-भाल करके बनवा देता।"

"आहा! पोखरी में क्या धुरंधर मेला लगता है। मुझे देखकर वहाँ के लोग हिल्लोरें लेने लगते है। मैं कहता हूँ—तुम लोगों को कहाँ रखाना करूं? सब मेरी देह मे सटना चाहते हैं। लगता है मेरी देह में उन्हें साँप की गंध मिलती है। उनकी गंध शक्ति बड़ी तीखी है। किसकी देह में वह परिचित गध है वे खूब समझते हैं।"

"आश्चर्य!'

"आदमी मुझे क्यों मानते हैं। बता सकते हो?"

"आप तेजस्वी पुरुष हैं, इसलिए।"

"नही, नही। आदमी जर, जमीन, पशु, बर्तन, घर, दुआर, साइकिल, रेडियो वगैरह पहचानते हैं। यह सब जो पा सकता था, फिर भी नहीं लिया, उसे आदमी बुद्धू समझता है। मुझे तो सभी पागल समझते हैं। मुँह पर नहीं कहते।"

"इसलिए श्रद्धा भी करते हैं।"

"गरीब करते हैं। दूसरे नही।"

"तब क्यों मानते हैं ?"

"साँप को लेकर लोगों के मन में एक अकारण डर भरा हुआ है। जो आदमी साँप से नही डरता, उसके अंदर कोई दैवी शक्ति है, ऐसा वे मानते हैं।"

"क्या ऐसा नहीं है ?"

"एकदम नहीं।"

"कहीं आपने तावीज बाँध दिया था···।"

"वे माँगते हैं, मैं दे देता हूँ।"

'वह क्या यों ही झूठमूठ ?"

"हाँ।"

"फिर भी कोई शक्ति तो है ?"

"बहुत पुराना अभ्यास है और अपने हाथों पर विश्वास। चतुराई से पकड़कर पिटारी में बंद कर देना होता है, बस।"

"पर किसी दिन आफत तो आ सकती है ?"

"अरे भाई, आफत से डरने स कहीं काम चलता है। मेरा बापू हाट से लौट रहा था। आंधी आयी तो एक बड़े से पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। पेड़ की एक डाल टूटकर ऊपर से गिर पड़ी। बेचारा वहीं ढेर हो गया। आफत आयेगी तो तुम्हें तुम्हारे बिस्तर पर भी आ दबोचेगी। विपत्ति से डरने से कहीं काम नहीं चलता है।"

गणपति माल पत्थर की सीढ़ियों पर बैठ जाते हैं। पृष्ठभूमि में पत्थर के स्तंभ खड़े थे। वहाँ उन्हें बैठा देखकर लग रहा था जैसे वास्तव में कोई राजा बैठा हो।

"आफत कब नहीं थी ? गरीब माल का लड़का हूँ, हमेशा से आजाद। बाबुओं के लड़के चोरी-चोरी मीटिंग करते थे। मैं भी जाता था।"

"कुछ करते थे या नहीं ?"

"बापू जब साँप पकड़ने जाते तो मैं भी जाता था। नहीं तो हाट-हाट में कुछ बेचता फिरता था। फिर दिगंबर बाबू का चेला बन गया। कहाँ मीटिंग होगी इसकी सूचना देता लोगों को। उनके हैंडबिल साटता फिरता। गाँव के गरीबों को समझाता कि अंग्रेजों को भगाने से देश स्वाधीन होगा। हम दूध-घी में नहायेंगे।"

"फिर ?"

"अगस्त में तो जोरदार लड़ाई शुरू हो गई और इतिहास तो जानते ही हो। देश स्वाधीन हुआ तो मैं जेल में था।"

"जेल से छूट कर क्या किया ?"

"बापू ने कहा—'अपनी गृहस्थी बसा।' बापू राजनीति-बाजनीति नहीं समझता था। कहा, 'देश के लिए खटा है, तुझे तो बहुत कुछ मिल सकता है।' उस समय मेरा भी दिमाग खराब हो रहा था। जेल से बाहर आने पर यहाँ मीटिंग, वहाँ जलसा, लोग फूल मालाएँ पहनाते। लोग कहते—'बेटा ने खूब काम किया।' मैं भी सोचता था मैं मोटी पूँछ वाला हनुमान हो गया हूँ।"

"स्वाभाविक ही था ऐसा सोचना।"

"बाद में सुना सभी स्वाधीनता-सेनानियों का नाम लिखा जा रहा है। मुझे भी नाम लिखाने जाना होगा।"

"गये थे ?"

"गया था। जाकर देखा अच्छा तमाशा हो रहा था। पराशर सामंत कांग्रेस की ओर से नाम लिख रहा था। वही पराशर सामंत, जिसने बयालीस के आंदोलन के समय अपने घर में बाकायदा पुलिस चौकी बना रखी थी और अमुक-अमुक आंदोलन में शामिल है यह बताता फिरता था पुलिस को और पुलिस उनके घर फूंक देती थी। वही पराशर सामंत स्वाधीनता मिलने के बाद स्वतंत्रता-सेनानियों की सूची बना रहा था।"

"आपने क्या किया ?"

"गालियाँ सुनाईं और मुँह पर थूक कर आ गया।"

"फिर कभी गये ?"

"फिर जाऊँगा ?"

"वह अभी भी कांग्रेस में है ?"

"वह मर गया। उसका बेटा भूतनाथ, जो कांग्रेस की खूँटी था इस इलाके का, वही अब लाल पताका उड़ाता हुआ अपनी मोपेड पर चलता है और आजकल अंचल प्रधान बना हुआ है। जमीन-जायदाद को मूर्तियों और कुत्ते-बिल्ली के नाम लिखाकर मौज कर रहा है।"

"ऐसा ही तो हुआ है।"

"सब, सब। सभी ने किया है।"

"फिर भी, आप राजा होना चाहते हैं ?"

"हाँ, चाहता हूँ।"

"क्यों ?"

"राज-पाट के लिए नहीं, बच्चा जी। वह आजकल कहाँ होगा ? पर हाँ, पत्थर-पाटी को देखकर माल-शबर-संथाल-भूमिज सभी बड़े आनंदित होंगे। मेरे लिए खुशी की बात यह होगी कि मैंने झूठा दावा नहीं किया था। मगर यह बात शायद तुम नहीं समझोगे।"

"कितना खोजा आपने, पर मिली कहाँ पटिया ?"

"हाँ खोजा है। 'और अच्छी तरह खोजो, पटिया निकलेगी', कह-कह कर तो चार-चार झीलों का जीर्णोद्धार कराया। अब उनमें लबालब पानी भरा हुआ है। देखो, यह शरीर तो एक दिन नष्ट हो जायेगा। मेरे मरने पर जानेंगे कि राजा था गणपति माल, प्रजा के लिए पानी की व्यवस्था करके मरा ! सबसे बड़ा है जलदान। क्या समझे ? पागलपन लग रहा है तुम्हें भी यह सब ?"

भगीरथ की समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस बात को स्वीकार करे, किसे नहीं ? कौन-सी बात सच है, कौन झूठी ? ये सब झीलें क्या किसी की व्यक्तिगत संपत्ति हैं ? नहीं, सरकारी हैं या पंचायती या सभा की जिसको कहते हैं।

झीलों की सफाई तो पंचायत करा रही है। पर गणपति माल की बातों से तो ऐसा लगता है जैसे इन सब सूखी झीलों की खुदाई, सफाई सब उसी की जिम्मेवारी है। काई, कीचड़ और जलकुंभी के पत्तों से ढँकी झीलों की सफाई यद्यपि पंचायत के उद्योग से हो रही है, फिर भी लगता है यह सब गणपति माल ही कर रहे हैं। उनके बिना यह सब नहीं हो सकता था।

"सब कुछ मैं ही कर रहा हूँ, यह सुन कर तुम्हें बड़ा अजीब लग रहा है न, बड़ा गोल माल ? मगर ऐसा है नहीं। अगर भूमिहीन संथाल-शबर और भूमिज पानी न पायें तो इससे पंचायत का क्या आता-जाता है ? अगर काम ढूंढ़ने के लिए वे तितर-बितर हो जायें तो पंचायत का क्या बिगड़ता है ?"

"ऐसा है ?"

"हाँ बच्चा, ऐसा ही है। ये किस पार्टी के हैं ? आंधी में उड़ते हुए

छटपटा रही है।"

"क्या बहू के ? चलो।"

भगीरथ अत्यत विचलित हो उठा। वह भी दौड़ पड़ा। गणपति और मगल भी दौड़ते हुए ही जा रहे थे। माही सत्पथी के पास पहुँचते न पहुँचते शिशु कंठ का चीत्कार सुनाई पड़ा।

बहू एक साल की एक संथाल शिशु थी। उसकी सास, मगला की पत्नी, जिसकी उमर अट्ठारह साल से ज्यादा न थी, बहू को गोद में लिये बैठी थी। गणपति माल ने बहुत सावधानी से बच्ची को गोद में उठाया। टार्च की रोशनी मे उसके पेट को अच्छी तरह देखा, फिर एकाएक बोले, "देखो तमाशा। नाभि के पास किलनी (एक कीड़ा) काट रही है, चमड़ी में धँसकर।"

गणपति ने कीड़े को नोचकर फेंक दिया, बोले—"इस जगह जरा-सा चूना लगा दो! है या नही ?"

"है।"

"यही आपकी बहू है ?"

"यहाँ जितने लोगों को देख रहे हो, सबके साथ मेरा व्यक्तिगत सबध है। यह हमारा परिवार है। चलो, आये हैं तो हिसाब-किताब देखते चलें। मंगल, चावल कितना है ?"

"अभी मेरा मन ठिकाने नहीं है। अभी मुझे सब कुछ ज्यादा दीख रहा है। फकीर को बोलिए, देखकर बतायेगा।"

"ठीक है। फकीर को देखने दो। और हाँ, सुनो, कुछ लोग मंदिर के चबूतरे पर रहना, समझे ?"

"ठीक है, रहेंगे।

"हिसाब कर लूँ, फिर यहाँ चल कर तू गाने का मजमा जमा।"

"आज नहीं। आज सोऊँगा।"

"सोयेगा, तो सो। रात मे मगर मैं सूखा मुरमुरा खाऊँगा। क्यों बच्चा, चलेगा ?"

"बाबू के लिए भात बनेगा।"

"नहीं नहीं, मैं भी मुरमुरे ही खाऊँगा।"

तिनके तो नहीं हैं ये कि जो भी एक पत्र को आश्रय देगा, उसी के दल में चले जायेंगे। कौन बेटा यह बात मुँह खोलकर कहेगा कि पारटी के कारण जीवन दूंगा? कोई नहीं। इनकी कौन-सी चीज खो गयी है, कह सकते हो?"

"जमीन-जायदाद···जिसके पास जो था, सब चला गया है।"

"हां, वह तो गया ही है। उससे भी बड़ी एक चीज इनकी खो गई है। उन्होंने इनसे इनका आत्म सम्मान छीन लिया है। इन्हें भिखारी बनाकर छोड़ दिया है। एक-एक टुकड़ा फेंक देते हैं, उससे क्या होगा? यही सबसे बड़ा दु.ख है।"

"आप क्या करेंगे?"

"मेरे पास भी तो कोई ढाल-तलवार नहीं है। इसीलिए चतुराई से एक-एक कदम रखता हूँ···जितनी दूर आगे बढ़ सकता हूँ, सावधानी से देखभाल कर उतनी दूर पाँव रखता हूँ। ये हमारे स्वजन हैं, अपने लोग।"

"स्वजन।"

"जरूर।"

"मान लीजिए पत्थर की पटिया पायी गयी। मान लीजिए बड़ा आनंद-उल्लास हुआ। फिर क्या होगा?"

"वह क्या कम है?"

"पर उससे होगा क्या?"

"वाह! यहाँ मंदिर बनाऊँगा, सारे देवी-देवता उसमें रहेंगे। मालशबर पूजा के अधिकारी होंगे। अभी अगर यह सब ताल में ताल न मिले तो सर्वनाश हो जायेगा?"

"क्यों!"

शशांक मंडारी के बंधु के रूप में लोग जाते हैं, मूर्तियाँ बेच देते हैं, या फिर सरकारी घोषणा करवा देते हैं कि यह सब कोई छुयेगा नहीं। पोखरी की झील के किनारे एक अष्टधातु की सरस्वती की मूर्ति निकली थी।"

"चलिए जरा आप लोग?"

"क्या हुआ रे मगल?"

"राजा बाबू! आपकी बहू की तबियत खराब है। पेट के दर्द से

छूटपटा रही है।"

"कन्या बहू के ? चलो।"

भगीरथ अत्यत विचलित हो उठा। वह भी दौड़ पड़ा। गणपति और मंगल भी दौड़ते हुए ही जा रहे थे। माही सत्तपी के पास पहुँचते न पहुँचते शिशु कंठ का चीत्कार सुनाई पड़ा।

बहू एक साल की एक संथाल शिशु थी। उसकी सास, मंगला की पत्नी, जिसकी उमर अट्ठारह साल से ज्यादा न थी, बहू को गोद में लिये बैठी थी। गणपति माल ने बहुत सावधानी से बच्ची को गोद में उठाया। टार्च की रोशनी में उसके पेट को अच्छी तरह देखा, फिर एकाएक बोले, "देखो तमाशा। नाभि के पास किलनी (एक कीड़ा) काट रही है, चमड़ी में घँमकर।"

गणपति ने कीड़े को नोचकर फेंक दिया, बोले—"इस जगह जरा-सा चूना लगा दो! है या नहीं?"

"है।"

"यही आपकी बहू है?"

"यहाँ जितने लोगों को देख रहे हो, सबके साथ मेरा व्यक्तिगत सबंध है। यह हमारा परिवार है। चलो, आये हैं तो हिसाब-किताब देखते चलें। मंगल, चावल कितना है?"

"अभी मेरा मन ठिकाने नहीं है। अभी मुझे सब कुछ ज्यादा दीख रहा है। फकीर को बोलिए, देखकर बतायेगा।"

"ठीक है। फकीर को देखने दो। और हाँ, सुनो, कुछ लोग मंदिर के चबूतरे पर रहना, समझे?"

"ठीक है, रहेंगे।

"हिसाब कर लूँ, फिर वहाँ चल कर तू गाने का मजमा जमा।"

"आज नहीं। आज सोऊँगा।"

"सोयेगा, तो सो। रात में मगर मैं सूखा मुरमुरा खाऊँगा। क्यों बच्चा, चलेगा?"

"बाबू के लिए भात बनेगा।"

"नहीं नहीं, मैं भी मुरमुरे ही खाऊँगा।"

गणपति ने आकाश की ओर देखकर कहा—"वे भी फटफटा रहे हैं। फटफटाने दो। झील खुद जाय, तब पानी पड़े तो अच्छा। हवा में कैसी महक है रे?"

"कदम के फूल खिले हैं।"

"हां, हां! क्यों बच्चा, पक्का कदम खाया है कभी?"

"नहीं।"

"तब फिर क्या खाया? खट्टा, मिर्च और नमक के साथ अमृत जैसा लगता है। चलो, मुरमुरे लेकर चबूतरे पर चलते हैं।"

"चलिए।"

"दो चटाइयां देना तो।"

"वहां सोयेंगे क्या?"

"और कहां।"

गणपति गहरी सांस लेकर कहते हैं—"छाती पर बैठकर सगर्जन भाल कह रहे हैं। तू सो जा। मैं जाग रहा हूं।"

फकीर शबर कहता है—"अगर रात में वे निकलें?"

"तो मुझे नहीं काटेंगे। चादर के नीचे चुपचाप पड़ा रहूंगा। काटेंगे क्यों?"

"वहां सांप है?"

"डरना नहीं बच्चा! डर की गंध वे पहचानते हैं। होंगे क्यों नहीं? जरूर होंगे। सभी को अगर पकड़ लूं तो चूहों और कीड़ों कौन खायेगा। अगर सांप न हों तो फसल तो चूहे ही खा जायं, कुछ किया, कुछ छोड़ दिया—यही नियम है मनसा का यह परिवार है। इसका विनाश कोई नहीं कर सकता।"

भगीरथ समझ रहा है कि इस आदमी की जीवनी लिखना उसके लिए असंभव है। उसे चले जाना होगा। पर पत्थर की पटिया मिलती है या नहीं यह देखकर वह जाना चाहता है।

कैसी है वह पटिया? किसने दी थी? पत्थर कहां से आया था? किसने लिपि प्रस्तुत की थी? खुदाई किसने की थी उस पर?

यही सब सोचते-सोचते वे चल रहे थे। सत्य जी के घर से मंगल और

फकीर एक-एक खाट ढोकर लाये थे। मंगल कहता है—"मुझे तो सब-कुछ डबल दिख रहा है। लगता है। तुम पार्टी पा गये हो और पंचू बाबू दो खसी दे गये हैं।"

"और तुम दो-दो मंगल होकर चार-चार हाथ से खा रहे हो। लगता है तुम्हारा सिर फिर रहा है। बहुत दिनों गदागद् खाई नहीं तुमने ?"

"तुम भी तो बदल गये हो। उस दिन मारा तो जैसे चोट ही नहीं लगी। पहले मारते थे तो सात दिन तक दर्द काटता था।"

"इस बार सात महीने तक दर्द होगा।"

"हमारे घनश्याम को देखो। बेटा एक बहू के होते हुए भी···।"

भगीरथ ने देखा गणपति माल मंगल के कंधे पर हाथ रखकर बिना किसी कुंठा के बात करते जा रहे थे।

"मैं भी तो हरी की पुरानी माँ के जिंदा रहते, इस नई माँ को लाया था। जो खुद किया है, उसके लिए दूसरे को मना कैसे करूँगा ? उस पर तुम लोग समाज को बुलाकर फैसला कर लो।"

"उसकी माँ भी यही कह रही है। देखता हूँ।"

"अगर मनसा मेला पहले की तरह जमे तो लड़कियों को पान की दुकान लगाने को कहूँगा।"

"पान तो लगा लेंगी लड़कियाँ। क्या मेला जमेगा ?"

"हाँ रे ! जमेगा क्यों नहीं। इन चारों खबों के ऊपर छाजन करेंगे। दीवारें बनेंगी और जो भी देवता झील से निकलेंगे उनकी स्थापना होगी अंदर। यहाँ के और भी जो देवी देवता होंगे सब ले आयेंगे।

"आ गये हम।"

"लो बच्चा, चलो सो जाओ। मच्छर तो हैं नहीं। फिर भी चादर सिर तक तान कर सोना ठीक रहेगा।"

बहुत डरते-डरते भगीरथ सोया सिर, के नीचे टार्च रखकर। गणपति शिशु की तरह निश्चिंत हो कर लेटते ही सो गये। सगर्जन माल शायद अतीत की विस्मृति से उठकर पहरा दे रहे हैं। क्योंकि डरा हुआ भगीरथ भी खूब निश्चिंत होकर सो रहा है।

पाँच

झील की मिट्टी नाप-जोखकर बराबर से काटी जा रही थी। चारो ओर से एकदम बराबर। कुदाल की चोट से मिट्टी के नीचे पडी कितनी ही चीजें निकल रही थी अलमुनियम की दबी-पिची गिलास, भैंस की सीग की एक कंघी, बकरी के गले की तिकाही, एक बहुत बड़ी जंजीर। फिर सिर्फ मिट्टी, मणि सत्पथी घड़ों मे भर कर मिट्टी ले गया। इस मिट्टी को पोखरे के पानी मे भिगोकर पेट पर लगाने से बहुत फायदा होता है। लड़कियाँ मिट्टी ढोकर रास्ते में फेंक रही थी। रास्ता भी ठीक हो जायेगा। झापावाडी से बाहर आने का रास्ता काफी ऊबड़-खाबड़ है। माटी बैठ जायेगी तो पिटाई कराई जायेगी।

"बारिश मे घुलकर मिट्टी बह कर नीचे नही जायेगी ?"

"उससे क्या मणि ? जो मिट्टी बहेगी, बह जायेगी तो किसी न किसी के खेत में ही।"

"काका ! झील तो पहले जैसी होती जा रही है, पर आपकी पत्थर-पाटी ?"

"देख मणि, पाटी मिलनी होगी तो मिलेगी। नही मिलेगी तो तुम लोगों को समुद्र जितना पानी तो मिल जायेगा ?"

"पत्थर-पाटी मिलेगी ?"

"मन तो कहता है मिलेगी। मन के भीतर बैठ कर समर्जन माल कह रहे है—मिलेगी। सवेरे मैदान जाता हूँ तो रोज नीलकंठ देखता हूँ। वह भी यही जता रहा है कि पाटी मिलेगी।"

"पाने पर क्या होगा ?"

"पाने पर ?"

गणपति उस समय झील के बीचों-बीच खडे धपाधप कुदाल चला रहे थे। कुदाल एक पल रोक कर सिर उठाकर उन्होंने कहा—"मैं राजा बनूँगा।"

"उसके बाद ?"

"अरे पाँचों गाँवों मे बहुत-सी जातियाँ हैं। किसी की दुकान है, किसी

की धान कूटने की मशीन, किसी की चारा काटने की मशीन—सब जैसा का तैसा रहने दूँगा।"

गणपति माल गंभीर कौतुक से हँसकर कहते हैं—"क्या राजा कभी प्रजा को उजाड़ता है? कभी क्या तुम लोगों से कुछ लिया है, जो आज लूँगा? पर हाँ, अभिषेक होगा बड़ी धूम-धाम से। तू तेल-मसाला देगा?"

"दूँगा। पानी पाकर तो जीवनदान मिला है हमें, जरूर दूँगा। और जितना माँगोगे उतना दूँगा।"

दिन दोपहर की तरफ चढ़ता है। भगीरथ और गणपति नहाने जाते हैं। कल शाम को हाट लगी थी। आज उनके लिए मछली-भात बना था।

"मछली तो बहुत बढ़िया हुई है।"

यह बात मुँह से निकलते ही झील की ओर से भयानक कोलाहल उभरता है, जैसे जनसमुद्र गर्ज रहा हो। साथ ही नगाड़ा और धमसा बज उठते हैं। गणपति थर-थर काँपने लगते हैं।

थर-थर काँपते हैं गणपति और पसीना चूता है तर-तर। भगीरथ समझता है। उसके कलेजे में भी जैसे धड़ाम्-धड़ाम् कोई चोट मार रहा है। गणपति जूठे हाथ से ही दीवार का सहारा लेते हैं।

"बाबा!"

मणि की बहू जोर-जोर से पंखा झलती है। गणपति की आँखें बंद हैं, पर साँस बहुत गहरी और तेज निकल रही है।

"बाबा!"

गणपित बायें हाथ को ऊपर उठाकर भरोसा देते हुए कहते हैं—"माँ, मैं ठीक हूँ।"

"बाबा! वे लोग आ रहे हैं।"

"तू भात को ढँककर रख दे।"

"नहीं बाबा, मछली तो खाकर जाओ। मैं निकाल देती हूँ। खिला देती हूँ।"

"नहीं माँ!"

किसी तरह भगीरथ को पकड़ कर उठते हैं गणपति। फिर हाथ धोते हैं। मणि की बहू हाथ-मुँह पोंछ देती है। पानी देती है पीने को। भगीरथ

से कहती है—बाबा को पकड़कर ले जाइयेगा।

तभी मंगत और उसके साथी अंदर आये और उन्होंने झपटकर गणपति को अपने कंधों पर उठा लिया। फकीर उछलता हुआ आया। गणपति ने कहा—"अरे ढोल उठा। मोहर दे।"

भगीरथ जैसे उनके बीच था ही नहीं, इस तरह वे उसे भूल गये। मणि की बहू ने मुस्कराते हुए कहा—"सब दौड़ पड़े हैं?"

वह जूठन उठाने लगी। भगीरथ मदद करने गया तो उसे आश्चर्य हुआ, बोली—"उन्हें बाबा कहती हूँ। बाबा मानती हूँ। उनका जूठन हम ही उठाते हैं। उनकी बात ही निराली है। ऐसे आदमी अब नहीं होंगे।··· आप चलिए। मैं भी घर बंद करके आती हूँ।"

पत्थर की पटिया को बरगद के पेड़ से टिकाकर रखा गया है। कोना टूटा हुआ था। लंबी पत्थर-पाटी थी। कुछ लिखा हुआ था, जो पढ़ा नहीं जा रहा था। पत्थर भी क्षय होता है। समय या काल बड़ा निर्मम नियामक है। गणपति पाटी को बड़े जतन से धो रहे थे। "नहीं, जो लिखा है उसको पढ़ने की क्षमता नहीं है मेरी। क्या समझे बच्चा? रहेगा तो सरजंन माल का ही नाम रहेगा।"

गणपति बोलते हैं—"बांस और खर ले आओ।"

बोलने का ढंग उनका बदल गया है।

"नये स्तंभों के ऊपर छप्पर डालो। तीन तरफ से बेड़ा बाँध दो। उड़िया लिपि लगती है, है न?"

भगीरथ ने कहा—"इधर तो यह लिपि चलती थी।"

"क्या उड़िया ही है?"

"उड़िया तो नहीं लग रही है। उड़िया लिपि में संस्कृत भाषा हो सकती है।"

"ऐसा ही होगा। सब लिप-पुत गया है, बच्चा।"

भगीरथ गहरी ममता से कहता है—"इसे लेकर खूब तहलका मचेगा। फोटो लिये जायेंगे। कोई न कोई पढ़ेगा। कितने ही लोग देखने आयेंगे।"

"पता नहीं क्यों मुझे लग रहा है अब मेरे पास करने को कुछ नहीं

है।" फिर मंगल को जोर से पुकार कर कहा—"मंगल ! सभी को यहाँ खुली हवा में ले आ और खाने को दे।"

पटिया को जोर से पकड़ रखा था गणपति ने। पूरे शरीर पर उनके मिट्टी और कीचड़ ही कीचड़ पुती थी। चट्टान जैसी उनकी देह पर सिर्फ काछनी थी। बिवाई फटे बड़े-बड़े पाँव और लंबी-लंबी उँगलियों वाली खूब चौड़ी हथेलियाँ। राजा सगर्जन माल ऐसा ही रहा होगा। विशाल वटवृक्ष जैसे उस राजा का चंदोवा था। प्राचीन प्रस्तर पट्ट उसका परिचय पत्र है। प्रस्तर पट्ट की तरफ, वहाँ उपस्थित जनता की तरफ घूमती हुई दर्प-भरी दृष्टि और होंठों पर स्मित लिए आर्द्र आँखों से प्राचीन कालीन किसी आरण्य राजा की तरह सभी की शुभकामना करते हुए गणपति बोले—"अब आकाश भी जल देगा। मनसा की जमीन धान देगी। देखो।"

मंगल संथाल गणपति की ओर गौर से देखता है, फिर हाथ में तीर लेकर आगे बढ़ता है। भगीरथ मुँह बाये देख रहा है अवाक् होकर। मंगल गणपति के दाहिने पाँव के अँगूठे में तीर चुभाता है। शीर्णदेह, प्राय. नग्न मंगल को जैसे उसके भीतर बैठा कोई पूर्व पुरुष उसे अपने तात्कालिक कर्त्तव्य का बोध करा रहा है।

उसी रक्त से मंगल गणपति के माथे पर तिलक लगाता है। अँगूठे में मुँह लगाकर बाकी रक्त चूस लेता है। फिर पीछे हटता है राजा की तरफ मुँह किये हुए।

फकीर शबर आगे आता है।

शाम तक चारों दिशाओं में यह समाचार फैल जाता है और कतार बाँधकर आदिवासी इकट्ठा होने लगते हैं।

झील के किनारे खूब हंगामा और शोरगुल शुरू हो जाता है। पंचूलाल को दो खसी देना पड़ा है। खाना पकाने और मादल बजाने का शोरगुल हो रहा है। जंगल, ब्लाक और सिंचाई विभागों के बाबू लोग भी जमा होते हैं। थाने के सिपाही भी आते हैं। नहीं, इसमें चिंता की कोई बात नहीं। गणपति माल इस इलाके का मान्य व्यक्ति है। परगना के हाकिम लोग भी अपने आदमी भेजते हैं। "हम देखने आये हैं। देखने आये हैं कि

ऐसा क्या हुआ है कि समूचा पांच गाँव खाली हो गया है और सारे लोग यहाँ आ गये है ?"

"परब लगा है, हमारा परब है यह। परधान बाबू गुस्सा मत करना। ऐसा दिन एक लाख चाँद में कभी एक बार आता है, कभी नहीं आता। कल से झपाझप कुदाल चलाकर काम पूरा कर देंगे। आज शबर चांगू लेकर नाचेंगे, हम पाता नाच करेंगे, भूमिज और मुडा दंग नाचेंगे, लडकियाँ गाना गायेंगी। भात, मांस खायेंगे, दारू पियेंगे। हमारा राजा सचमुच आज राजा हुआ है।

कल से मनसा की भूमि फिर जैसी थी वैसी कर देंगे। तुम दूर क्यों खड़े हो ? देखने मे कैसा-कैसा लग रहा है ! ठीक है, दूर ही रहो।

राजा का आदि पुरुष जिसका नाम शायद सगर्जन माल था। वही हम सभी के पुरखो को यहाँ लाकर बसाया था। इसी जंगल महाल में। इसी कुआंरी भूमि पर।

बड़ा आनद, बड़ी धूमधाम।

ब्लाक के एक बाबू ने कहा—"पता नही क्या लिखा है ?"

भगीरथ ने कहा—"जाकर उनसे पूछिए।"

"न···न···नही। पर आप कौन हैं ?"

"मैं उनकी जीवनी लिखने आया हूँ।"

"अरे! अच्छा।"

प्रधान ने कहा—"चुप रहिये। यह सब बोलने का यह वक्त नही है। देख रहे हैं ? लोग चले ही आ रहे हैं कतार के कतार। गणपति जिनकी ताकत से जिंदा है, जो उसके अपने लोग हैं।"

एक बैलगाडी आकर रुकती है। हरि, कुज, खगा और बगा किसी को ला रहे हैं। काली, बलिष्ठ देह वाली उनकी माँ है वह। तेल से तर बालो की गोल झूंटी सिर के ऊपर खीचकर बँधे हैं। शरीर पर घुटनों तक ऊँची हल्दी रग की साड़ी, सस्ती, झलकती हुई, पर एकदम नई।

गणपति सिर उठाकर उधर देखते है। चेहरा तमतमा उठता है।

"अब समय हुआ ?"

"घर में पीली धोती थी क्या ?" प्रौढ़ा का सतेज उत्तर था।

दोनों एक दूसरे को देख रहे हैं। लोग परेशान है। पता नहीं राजा अब क्या करें।

फिर गणपति हँसते हैं। प्रौढ़ा के होंठों पर भी हँसी बिखर जाती है। गणपति पुकार कर भगीरथ से कहते हैं—"देख लड़के। प्रेम-पिरीत इसे कहते है। पीले रंग की साडी खरीदकर···।"

जोरो से भयंकर ध्वनि करते हुए धमसा, नगाड़ा और मादल बजने लगते है। गणपति कहते हैं—"और जोर से बजा। यह हमारा एक रात का राजत्व है। बजा, और जोर से, और।"

बड़ा आनंद, बड़ा जोश था चारों ओर। भगीरथ उस आनंद के प्रवाह में डूब गया।

स्वदेश की धूलि

स्वदेश की धूलि
जैसे सोने के कण···

सवेरे से ही यह गीत रसिक के मन में बार-बार उठ रहा है। क्यों उठ रहा है, यह नहीं जानता रसिक। ओरे मन! ओरे रसिक ओरांव के मन! रसिक के साथ तुम कैसा-कैसा खेल करते हो? सवेरे से ही यह गीत मन में गूँज रहा है। बस यही दो पंक्तियां। इसके बाद की पंक्तियां याद नहीं आ रही हैं। पानी के कीड़े की तरह सिर्फ ये दो पंक्तियां मन में तैर रही हैं। रसिक गाने की कोशिश करता है, पर बेसुरा हो जाता है। चौंसठ साल की रूखी देह में क्या सुर बचा रहता है?

सवेरे से ही वर्षा की झड़ी लगी हुई है। कभी थोड़ी धीमी हो जाती है तो कभी झमाझम। वर्षा देखकर आज भी मन में उथल-पुथल होती है। ओरे मन! रसिक ओरांव के मन! रसिक के साथ इतना खेल क्यों करते हो? रसिक न तो किसान है, न बटाईदार, न खेत-मजूर। इस झमाझम वर्षा में हुलास मार कर खेत में नहीं कूदेगा वह। महाजन की दया से पति-पत्नी घर में बैठकर बीड़ी बांधते हैं इतनी-सी बात नहीं है। फिर भी ए मन! वर्षा में नाचो।

और यह गीत! जल के कीड़े की तरह इसने भी बादलों को देख लिया है कि मन के भीतर चक्कर काट रहा है। स्वदेश बाबू का गीत।

पत्नी से पूछने को मन करता है—"कुश की माँ ! स्वदेश बाबू यह गीत गाते थे। तुम्हें ध्यान है ?" उन्होंने यह गीत अपनी दादी से सीखा था।

कुश नही है, फिर भी कुश का बाप और कुश की माँ हैं। कुश की माँ काली पंजों के बल बैठकर बादलों की लीला देख रही है। बादल ! तुमने उपले सुखाने नही दिये न ? अब भीगे उपले कौन लेगा, बोलो ? देखते-देखते उसका मन भी उदास और अतीतमुखी हो उठता है। जिन दिनों वे करम राजा की पूजा का पूर्व मनाते थे, उन दिनों पूजा के कितना पहले से ही काली और दूसरी लड़कियाँ गीत गाने लगती थी।

अब देश-काल वैसा नही रह गया है। बेहुला गाँव का तो नाम भी अब मिट गया है। मधुगंज बढ़ने-बढ़ते, फैलते-फैलते गाँवों को निगलता जा रहा है। अब कहाँ करम राजा की पूजा और कहाँ पूजा के गीत ? फिर भी सब कुछ याद आता है।

इस प्रकार दो अलग-अलग गीतों के बोल और सुर दोनों के मनों को उद्वेलित कर रहे थे। रसिक सोच रहा था, पता नही पानी कब रुकेगा।

"आँगन की सफाई करनी होगी। क्या कहती हो ? यह भी एक अजीब दिन है।"

"हाँ, कर दूँगी साफ।"

"क्या कहती हो, गोपाल आयेगा ?"

"आये न आये उसकी मरजी। दूसरे के लड़के पर अपना कोई जोर तो है नही।"

"आज आयेगा। गमछा तो ला दिया है। करम का चारा मध्यम ग्राम से…"

काली चुप रहती है। कुछ देर बाद थोड़ा हँसकर कहती है—"बड़े भाग से करम का पौधा आँगन में लगाया जाता है। चलो आँगन धो-पोछ दिया। पाँच जनों को बुलाया। पेड़ लगा दिया। उससे हमारा क्या भला होगा जानते हो ?"

"होगा, होगा।"

"पेड़ की डाल से ही चारा बनता है।"

"हो सकता है।"

''''शामुकभांगा के मैदान में स्वदेश बाबू पत्थर की तरह खड़े थे।' एकाएक जमीन की धूल उठाकर सिर पर डालने लगे। मैंने कहा—बाबू, यह क्या कर रहे हैं? मेरी ओर देखकर रो पड़े, बोले—अरे रसिक, यह स्वदेश की धूलि है।"

चौंतीस वर्ष के पार से स्वदेश बाबू की स्मृति जैसी पैदल चलकर आती है, दौड़ी चली आती है, नदी, तालाब, मैदान को फलांगती और जैसे हांक लगाकर कहती है—लड़कियो, शंख बजाओ। वे आ गये हैं। बेहुला के घाट पर उतर रहे हैं।"

कहीं शंख बजता है।

"यह लो। शंख कौन बजा रहा है?"

"और कौन? अर्जुन की बुआ बजा रही है। बादल देखा तो शंख में फू—ऊ। क्यों, पूछो तो कहेगी बुरे ग्रह टलते हैं। आंधी आयेगी तो क्या शंख बजाने से रुक जायेगी? फिर कहेगी—क्या करें? पुराना अभ्यास है।"

रसिक के वंश के लोग प्राय: सौ वर्षों से इस अंचल में रहते हैं। अपनी मातृभाषा भी भूल गये हैं। ये लोग। काकद्वीप, संदेश खाली, बासंती, कैनिंग के बीच उनके नाते-रिश्तेदार हैं।

रसिक अन्यमनस्क भाव से कहता है—"इस बार बाढ़ नहीं आयेगी। और आई तो आदमी नहीं बचेगा।"

"बोलो मत। पिछले साल'''अरे यह क्या? दामाद हैं क्या? इतनी वर्षा में?"

सुदूर अतीत में, काकद्वीप और तेभागा में जब कुछ दिनों के लिए कृषक समिति ने इलाके पर कब्जा कर लिया था'''सब कपोल कल्पना है। कपोल कल्पना! उधार खाता, कर्ज के कागज, जमींदारी के कागज-पत्र, जिनमें सैकड़ों-हजारों किसानों के जीवन कैद थे, उन्हें आग के हवाले कर दिया गया। कल्पना जैसा लगता है। स्वदेश बाबू और दूसरे पांच लोग बैठकर जमीनें बांट रहे थे। सभी लोगों ने धान अपने झोले में रख लिया था।

उसी तरह के रूपक या जैसे दिनों में कामिनी बेरा की नई नवेली बहू

"गोपाल कह रहा था मकान बहुत बड़ा है और करम का पेड़ भी बहुत बड़ा है।"

"मैंने तो देखा नहीं है।"

कहाँ मध्यमग्राम और कहाँ स्वदेश बाबू के पिता का बड़ा-सा घर। घर छोड़कर वह बेहुला, मौखाली, शामुकभाँगा आते थे, यह बात रसिक और उसकी बीवी जानते हैं। हट्टा-कट्टा आदमी, भैंसे की तरह काला, पत्थर में खुदाई किया हुआ-सा चेहरा, मिलिट्री का ड्रेस भी पहनते थे स्वदेश बाबू। एक बार पुलिस ने हाट को घेर लिया था। वह आदमी गमछा माथे पर बाँधकर और धोती की काछनी काछ कर तूफान मुल्ला बनकर उसी हाट में बैठा रहा।

ये सब बातें पति-पत्नी दोनों के ही मन में उठती हैं। पता नहीं देर से आयी वर्षा के पानी भरे धूसर बादलों में और भीगी हवा में ऐसा क्या होता है!

काली अस्फुट स्वर में बोलती है—" उस बार स्वदेश बाबू भी थे, कुश भी था। सब जमीन हम लोगों को बाँट दिया—करम पूजा पर बेहुला में वह अंतिम धूमधाम थी।"

"हाँ।"

अविवाहित युवक नहा-धोकर, पवित्र होकर करम की डाल ले आये। कुश करम की डाल आखिरीबार ले आया था। उसके बाद शामुकभाँगा में पुलिस ने जो गोलीबारी की उसमें कुश भी मारा गया। कुश ओरांव, पिता-रसिक ओरांव, आयु···"

"स्वदेश की धूलि-जैसे सोने के कण·· स्वदेश बाबू ने गाया था। वाह! क्या गला पाया था।"

"क्या बाघ जैसा चेहरा था!"

"हाँ।"

"अब क्यों नहीं आते?"

"बहुत दूर है···किसी और देश में··।"

"इतने बरसों में एक बार आये, पर हमारे भाग में उनसे मिलना नहीं लिखा था, सो नहीं मिल सके।"

"शामुकभांगा के मैदान में स्वदेश बाबू पत्थर की तरह खड़े थे। एकाएक जमीन की धूल उठाकर सिर पर डालने लगे। मैंने कहा—बाबू, यह क्या कर रहे हैं? मेरी ओर देखकर रो पड़े, बोले—अरे रसिक, यह स्वदेश की धूलि है।"

चौंतीस वर्ष के पार से स्वदेश बाबू की स्मृति जैसी पैदल चलकर आती है, दौड़ी चली आती है, नदी, तालाब, मैदान को फलांगती और जैसे हांक लगाकर कहती है—लड़कियो, शंख बजाओ। वे आ गये हैं। बेहुला के घाट पर उतर रहे हैं।"

कहीं शंख बजता है।

"यह लो। शंख कौन बजा रहा है?"

"और कौन? अर्जुन की बुआ बजा रही है। बादल देखा तो शंख में फू—क। क्यों, पूछो तो कहेगी बुरे ग्रह टलते हैं। आंधी आयेगी तो क्या शंख बजाने से रुक जायेगी? फिर कहेगी—क्या करें? पुराना अभ्यास है।"

रसिक के वंश के लोग प्रायः सौ वर्षों से इस अंचल में रहते हैं। अपनी मातृभाषा भी भूल गये हैं। ये लोग। काकद्वीप, संदेश खाली, वासती, कैनिंग के बीच उनके नाते-रिश्तेदार हैं।

रसिक अन्यमनस्क भाव से कहता है—"इस बार बाढ़ नहीं आयेगी। और आई तो आदमी नहीं बचेगा।"

"बोलो मत। पिछले साल···अरे यह क्या? दामाद हैं क्या? इतनी वर्षा में?"

सुदूर अतीत में, काकद्वीप और तेभागा में जब कुछ दिनों के लिए कृषक समिति ने इलाके पर कब्जा कर लिया था···सब कपोल कल्पना है। कपोल कल्पना! उधार खाता, कर्ज के कागज, जमींदारी के कागज-पत्र, जिनमें सैंकड़ो-हजारों किसानों के जीवन कैद थे, उन्हें आग के हवाले कर दिया गया। कल्पना जैसा लगता है। स्वदेश बाबू और दूसरे पांच लोग बैठकर जमीनें बांट रहे थे। सभी लोगों ने धान अपने झोले में रख लिया था।

उसी तरह के रूपक या जैसे दिनों में कामिनी बेरा की नई नवेली बहू

ने काली ओराव को 'माँ' कहकर पुकारा था। संतान प्रसव की व्यथा में तड़प रही थी बहू। काली उसके पास बैठी थी। "हाँ बेटी, तुमने माँ कहकर पुकारा है मुझे। मैं यही हूँ। कही नही जाऊँगी।" बाद मे लड़का हुआ था। काली ने कहा था—"दामाद हो। डलिया भरकर बताशा लाओ। नही तो नाती का मुँह नही दिखाऊँगी।" तभी से यामिनी बेरा रसिक और काली के दामाद हो गये। वह बहू कब की मर गयी। दामाद ने फिर ब्याह किया है। यह बहू वैसी नही है। कहती है—"वह काली कलूटी रांड मुझे बेटी क्यों कहती है? तुम्हारे नाम के साथ भी बाबू नहीं लगाती। ये चार ठों बैंगन लायी थी। बोलती है—"बेटी, तल कर कलौंजी बना लेना।" छि: ! ऐसे गदे-संदे काले हाथों की चीज खाने मे घिन नही लगती तुम्हें?"

वह लड़का मुझे दादी माँ कहता था। अब मुँह घुमाकर चला जाता है। यामिनी बेरा अपनी दूसरी बीवी के वश में है और कारोबार लड़के के वश मे। रसिक अब उसे "यामिनी बाबू कहता है, पर काली अभी भी 'दामाद' कहकर ही बुलाती है।

यामिनी बाबू साइकिल ठेलते हुए अंदर आते हैं। पक्का चेहरा, साइकिल अभी भी साय-सांय चलाते हैं और मुँह में बीड़ी कभी बुझती ही नही। रसिक को बीडी बांधने का काम उन्होंने ही दिलाया है। इस समय उनका चेहरा उदास है।

"जरा पानी देना, सासु जी।"

"यह लो।"

घट-घट करके पानी पीते हैं यामिनी बाबू।

"क्या हुआ, दामाद?"

"क्या हुआ?···रुको बताता हूँ। यहाँ लगता है वर्षा उतनी नही हुई है। मैं कदम बेलतला से आ रहा हूँ। वहाँ तो बहुत पानी पड़ा है। सब कुछ भीग कर गोबर हो रहा है।"

"कपडे निकाल देते तो ठीक रहता। मगर दूँ क्या?"

"नही नही, मुझे अभी जाना है। एक बार गणेश के घर भी जाना है। वह अस्पताल से लौटा है।"

"मैं तो कुछ भी नहीं जानती। क्यों···?"

"कदम बेलतला में माधव, मधुगंज में विपिन, और ग्रामुकभांगा में नसीब···"

"इतने दिनों बाद उन्हें क्यों खोज रहे हैं?"

"क्यों?"

यामिनी बाबू धुंधली आँखों से ताकते हैं। दोनों आँखों में उनके शायद जाला पड़ रहा है, इसलिए मैली हो रही हैं। अब आँखों में पहले जैसी उत्तेजना और आवेग नहीं छलकते। यामिनी बाबू खुद भी दिन पर दिन धुंधले होते जा रहे हैं। एक जमाना था जब यह आदमी बड़ा कलाकार था। माला (एक लोक नाट्य) में औरत बनकर गाते थे। पुलिस के आने की खबर पाकर एक बार काली की साड़ी पहनकर, घड़ा कंधे पर रख कर पोखरे की तरफ निकल गये थे पुलिस के सामने से। बाप रे, वर्षा के उस चौड़े घाट को, साड़ी किनारे पर छोड़कर और घड़ा फेंक कर, एक डुबकी में पार करके निकल गये थे। बाद में उस बात को याद करके क्या हँसी! पीतल की मटलोई को 'ढाक ढिमाढिम' बजा कर क्या राग छेड़ते थे:

मैं बेहुला सती हो!
गोद में मरा पति हो।
गांगनी के जल में तैरती चलती हूँ।
जवानी दूँगी जल को।

वह यामिनी बाबू कब के भाग गये हैं। यह यामिनी बाबू बड़े पके-पकाये आदमी है। पुराने लोगों की थोड़ी खबर रखते हैं। और पवित्र अट्ठारहवीं कार्तिक के दिन ग्रामुकभांगा के मैदान से मीटिंग करने आते है।

यामिनी बाबू ने कहा—"क्या कहूँ रसिक। स्वदेश बाबू अब नहीं रहे।"

"स्वदेश बाबू!"

"हाँ रसिक! अखबार में देखकर आ रहा हूँ। कदम-बेलतला में देखा पर। उनकी बातें सुनने वाले अब कहाँ हैं? इसीलिए सोचा तुम्हें बताता चलूं।"

रसिक के मन में जो कुछ घट रहा है, उसे व्यक्त करने की क्षमता नहीं है उसमें। आज ही उसे स्वदेश बाबू की कितनी याद आ रही थी।

वैसे ही उसके मन मे स्वदेश बाबू का गीत पानी के कीड़े की तरह चक्कर काट रहा था।

"स्वदेश बाबू भी अब नही रहे।"

"हाँ, चार दिन हो गये।"

"कहाँ?"

"जहाँ रहते थे। समुदर मढ़ में।"

"तो फिर···बाबू···अब कुछ नही होगा?"

"क्या होगा?"

"सभा नही होगी? सभा करनी चाहिए···पताका झुकाना चाहिए···उन दिनों तो वह मधुगंज के राजा थे···और उस बार तुम्ही ने तो कहा था कि वे पुरानी पारटी मे काम कर रहे है।"

रसिक की बात वैसे ही खो गई, जैसे तेज हवा में कटी हुई पतंग की डोर। स्वदेश बाबू की कहानी पर, अतीत की यादो पर, सब कुछ पर चौंतीस वर्षों से ढेर सारी मैल जम गयी है, जिसके नीचे सब कुछ दब गया है। पर यह बात भी सच है कि सब कुछ कही न कही रह जाता है। अंतत. कुछ भी पूरी तरह समाप्त नही होता। स्वदेश बाबू की खबर आज भी सीने मे बहुत गहरे महसूस होती है। उस समय तो कितने ही बाबू लोग आये थे। कितने ही याद मे बड़े-बड़े नेता बने।

नेता बने, नेता गये। कितने लोग कितनी तरह के थे। चंद्रनाथ बाबू को उन दिनों रसिक और दूसरे लोगों ने देखा तक न था। कई साल आगे कलकत्ता में उनकी मौत हुई तो मधुगंज से बेहुला तक कितने ही जुलूस, कितने झंडे आधा झुके हुए लेकर लड़के लड़कियां चल रहे थे, कितने ही किसान भी शामिल हुए थे। नही, रसिक वगैरह को किसी ने नही बुलाया। रसिक लोग यामिनी बाबू की पारटी मे हैं। यामिनी बाबू पुरानी पारटी मे हैं। इसलिए उनका विश्वास करना मुश्किल है। बेहुला के रसिक ओरॉव, गणेश भूयां, कदमबेलतला के माधव दास, मधुगंज के विपिन माली, शामुकभांगा के नसीब मल्लिक इनमे से कोई भी विश्वास के योग्य नही है। रसिक ने सुना था उन दिनो पारटी का बँटवारा नही हुआ था और पुरानी पारटी ने ही तेभागा का आंदोलन किया था। पर आज की

पुरानी पारटी की महक रह जाय तो तुम कलेरा से मरे आदमी की लाश की तरह हो जाओगे। तुम्हें कोई छुएगा नहीं। पर यहाँ के बाबुओं में से किसी ने नहीं कहा कि उन दिनों पारटी टूटी नहीं थी, और उसी ने तेभागा का आंदोलन किया था। उन दिनों भूपण भूया भी तो थे। आज वह अंचल के एक बड़े नेता हैं। क्या वह भी सब कुछ भूल गये? वही भूपण भूयां, जो उन दिनों यामिनी बाबू को 'भैया' कहते थे और पंद्रह साल के छोकरे थे। जमींदार का एक रखवाला थे। उन्होंने अपनी आँखों देखा था—रसिक ओरांव और उसके साथियों ने तेभागा की कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ी थीं। भूपण भी जानते हैं कि उन दिनों चंद्रनाथ बाबू इधर एकदम नहीं आये थे। बहुत हुआ तो डायमंड हार्बर तक आकर फिर वापस कलकत्ता चले जाते थे। रसिक घर में बैठा रह गया। उसके मुँह के सामने से जुलूस निकल गया। घर में बैठे रसिक के कानों में भूपण के बेटे सुव्रत का भारी गला सुन पड़ा—'आज महान तेभागा आंदोलन के महान नेता कामरेड चंद्रनाथ हालदार के महाप्रयाण के अवसर पर महान लाल पताका को आधा नमित किया जाता है।'

कितने दिनों से यह असंभव योग-वियोग चल रहा है। जमींदार के खाते के जटिल अंकों की तरह। आज एक पारटी। वह पारटी तेभागा कराती है। हेइ! सँभालो, धान सँभालो! हेइ! सँभालो जान सँभालो। फिर पुलिस-मिलिटरी की नाकाबंदी। हेइ! सँभालो धान हो! फिर लड़ाई ही लड़ाई! युद्ध रे युद्ध! हँसिये पर शान दो! बैरकपुर में जो सिपाही आज तक लड़ने का ही अभ्यास करते रहे हैं, उन्होंने किसानों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया है। जान कबूल और मान कबूल! इसके बाद पारटी शायद मार खा गयी। शुरू हो गयी धर-पकड़। जमींदार और उनके आदमी बहुत दिनों बाद इलाके में घुसने लगे हैं। दूँगा नहीं, दूँगा नहीं रक्त से बना धान, हमारी जान हो! धानखेत रखने में इतना झमेला। करो सब ताल-तलैया। बांध बनाओ। भरो पानी से। चारों ओर बांधों का हुजूम। जमींदारी उन्मूलन कानून आ रहा है। बाबुओं ने व्यवस्था की थी कि खेतों को तलैया बनाकर बचा जा सकता है, इस कानून से। डुबाओ; डुबा दो धान के खेतों को। घुसाओ पानी खेतों में।

तेभागा की चर्चा बंद। दे बाँस की डलिया। चला पानी, चला।

असंभव योग-वियोग, भयंकर जटिल गणित। रसिक ओराँव यदि मुख-मय साँतरा का काश्तकार हो, यदि उसने तेभागा की लड़ाई में हिस्सा लिया हो, तो रसिक ओराँव के जीवन के साथ जोड दो गुप्त मीटिंगें करना, छाती में साहस, हाथ मे हँसिया और कटारी, धनुष, जमीदारी के कागजों का दाह, पटवारी के खाते जलाकर उसकी राख पर नाच-गान। यह सब जोड़ने के बाद रसिक ओराँव हो जाता है एक विशाल, महाकाय, पागल।

फिर घटाओ एकमात्र पुत्र कुश की मृत्यु कराकर, जमीन से बेदखल कराओ, फिर जोड़ो चार बरस पुलिस की हाजत में निवास। फिर घटाओ घर के बर्तन-भांड़े, बैल-गोरू और पुत्रशोक मे आतुर काली का घर से निकाला जाना। जोड़-घटाना, योग-वियोग। फिर यामिनी बाबू वगैरह जेल से छूटे, *कलकत्ता जाकर खाद्य-आंदोलन किया, फिर जमीन-दखल की* लड़ाई। तब भी सब एक साथ थे। उसके बाद पारटी भंग हो गई, कितनी लड़ाइयाँ हुई, कितना समय बीता। काली ने दूसरो की बकरियाँ पालने का काम लिया हाथमे।

इधर सातरां बाबू के परिवार ने पता नहीं कैसे सब समेट लिया। अरे हट! किया होगा कभी तेभागा आदोलन। तुम लोगो के अलावा क्या काश्तकार नही है दुनिया में? यामिनी बाबू, भूषण, मतिलाल बाबू सभी जैसे लूडो के खेल की गोटियों की तरह चालें चलने लगे। बाबुओं के घरों मे ब्याह के बाद जैसे कौड़ी खेली जाती है। चावल के नीचे कौड़ियों को छिपा दिया। अब देखें तुम पाते हो या मैं। बाबू! इतना कुछ हो रहा है। *तो क्या हमें—जिन्होंने तेभागा की* लड़ाई लड़ी थी, कितना कष्ट पाया था—कुछ नही मिलेगा?

रहने दो बाबू, मुझे वह सब मत सिखाओ। सिर्फ तेभागा के लिए तो वह बातें सही नही थी। किसान के हाथ मे हथियार है। किसान जमीन पर कब्जा करेगा। जिसके हाथ में हल है, जमीन उसी की है। क्यों बाबू, तब तो पारटी ने ही ये बातें कही थी। देखो बाबू, अगर पारटी ने चार आना कहा होगा तो स्वदेश बाबू और मधुमय बाबू जैसे लोगों ने चार सौ गुना ज्यादा किया। पारटी की तब जवानी थी और जवानी के गरम खून

ने बहुत से कठिन काम कर दिखाये थे। अब पारटी का बँटवारा हुआ, देह पर मोम चढ़ा है, बाल पक रहे हैं, बुद्धि भी पक गयी है, अब पारटी के नाम से नाचना मुश्किल है। सांतरा बाबू, राम परिवार, हाजरा परिवार जमींदार थे। अभी भी उनके पास बहुत जमीन है। इसे लेकर दिमाग का पारा चढ़ाना काम की बात नहीं है।

योग-वियोग, जोड़-घटाना का जटिल खेल चल रहा है। बाद में देखते हैं कि रसिक ओरांव और सभी उसकी तरह के लोग अंक के बंदर हो गये। बंदर को तेल से सनी लाठी पकड़ा दी गयी, जितना ऊपर चढ़ता है, उतना ही नीचे गिरता है, बल्कि उससे ज्यादा नीचे गिरता है। गिरते-गिरते बंदर बूढ़ा हो रहा है। दम खतम हो रहा है उसका। बंदर, गिरते-गिरते तुम कहाँ जाओगे ?

यामिनी बाबू फालतू जैसे हो जाते हैं। कानू हांसदा की बहू गाँव छोड़कर चली जाती है। भूपेन बेरा की बहू भीख माँगना शुरू करती है। वही भूपेन, जिसे बड़गाछी में गोली लगी थी। नसीब शामुकभांगा में ही रहता है। रस्सी बुनता है। माधव भूषण की राशन की दुकान के पास हवाई चप्पलों की बिक्री करता है। विपिन वाकई अंधा हो गया है। हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है। अंधा आदमी कर भी क्या सकता है।

गणित चलता है, हिसाब चलता है। अचानक पता चलता है तेभागा महान तेभागा बन गया है। कितने ही लोग पेंशन पाने लगे हैं। ओ मन ! रसिक ओरांव के मन ! तुम आँख खोलकर, क्या देख रहे हो ? वही मधुगंज, वही कदमबेलतला, वही बड़गाछी—नामों में कोई फर्क नहीं पड़ा। पर पुराने चित्र साफ हो गये हैं। उनकी जगह नयी तस्वीरें लग गयी हैं। पुराने खेत, पोखरी, नदी, कचहरी। ग्राम का चित्र अस्थायी था। अब के चित्र कोई परमानेंट सो नहीं हैं। कितने मकान, कितनी सड़कें, बसें, दुकानें, कितने ही नये-नये लोग। और चारों तरफ कितने ही दलों के कितने ही नेता। सबका मिजाज मिलिटरी जैसा। सब कुछ उनके हाथ में।

ओ मन ! रसिक ओरांव के मन ! तब जैसे वर्षा में विडीधान खेत में हुलस उठता है, वैसे ही क्यों हुलसे थे ? रसिक के मन को तो उसके वश में होना चाहिए था। पर नहीं, मन ने ही रसिक को वश में कर लिया और

उसकी छुट्टी करा दो। यामिनी बाबू, हमारा कुछ नहीं होगा? हमें कुछ नहीं मिलेगा? बाबू हो! तेभागा के कारण खेत-मजूरी, दिन-मजूरी जहाँ जो मिल जाता है, करता हूँ। बाबू हो! तेभागा के ही कारण विपिन की तीन बीघा जमीन छिन गयी। नसीब की डेढ़ बीघा जमीन और पोखरी चली गयीं।

यह जोड़-घटाना का गणित बहुत जटिल होता है। अंक का उत्तर भूपण भुया के करजे में चला जाता है। फलस्वरूप, यामिनी बाबू की जो भाग-दौड़ शुरू हुई वह खतम ही होना नहीं चाहती। वह भी फालतू। साला, तू पुरानी पारटी का आदमी, तेरी बात कौन सुनेगा भला! अंक-गणित का उत्तर अब सुधानन्द सांतरा और कमल-हाजरा वगैरह के पास है। वे अब भूपण की पारटी के लोग हैं। तेभागा, मगर महान तेभागा हो गया है। काकद्वीप—तेभागा की 'यात्रा' (एक तरह का लोकनाट्य) बीस हजार रुपये खर्च करके अभिनीत हुई। बहुत बड़ी सभा हुई, जहाँ नेता लोग मंच पर पधारे। घर बैठ कर रसिक माइक पर सुनता है एक सम्मिलित, सुशिक्षित सिंथेटिक आवेगवाले सिंथेटिक गले से गाया गया कोरस—हेइ सँभालो, धान सँभालो।

रसिक ओरांव जब शामुकभांगा गया तो नसीब ने कहा था—"स्वदेश बाबू और मधुमय बाबू ने अच्छा किया। स्वदेश बाबू तो घर छोड़कर चले गये और मधुमय बाबू, जो अभी तक पुलिस की आँख में धूल झोंककर भागे रहे, इस तरह कि उनकी कोई याद भी नहीं करता। "रसिक के मन में चलचित्र की तरह सब तैर रहा है।

"बाबू! मधुमय बाबू जानते हैं क्या?"

"कागज में देखूँगा।"

"कागज में क्या बहुत लिखा है?"

"थोड़ा-सा लिखा है।"

"मीटिंग नहीं होगी?"

"देखता हूँ क्या व्यवस्था होती है!"

"और कोई न हो, तुम तो हो चंद्रनाथ बाबू कुछ नहीं करते। यहाँ थे भी नहीं…"

"कहा न, देखता हूँ।"

"मातंग, वनमाली, कुंज, नसीराम, केशव ! ये तो भूषण के दल मे चले गये हैं। पेंशन भी पाते हैं, सुविधाएँ भी बहुत-सी पायी है तेभागा के नाम पर। स्वदेश बाबू चले गये तो क्या एक सभा तक वे नहीं कर सकते ?"

ये सब बातें यामिनी के भी मन में उठ रही हैं। रसिक वही बातें कह रहा है, जैसे उनके विचार पढ़कर सुना रहा हो। इसीलिए वे रसिक के ऊपर खीझ उठे।

कहता हूँ पानी तो थमने दो। सोचा था थोड़ी देर रुक जाऊँगा। खैर, अब चलता हूँ।"

यामिनी बाबू बाहर आ जाते है।

"दामाद चले गये।"

"कुश की माँ ! वह पहले की तरह ही अल-भुनकर काम करने गये हैं, क्या ऐसा नही लगा तुम्हें ?"

काली ने उत्तर दिया—"क्या काम करेंगे ? दामाद की बात मानता कौन है ? उनका अपना बेटा भी तो भूषण के दल में है।"

"और देख, आज ही तुझसे उनके गीत—'स्वेदश की धूलि, जैसे सोने के कण' की चर्चा कर रहा था।"

"दामाद के दिल को बहुत चोट लगी है।"

"हाँ, हाथ पकड़कर उन्हें सब-कुछ सिखाया था। कुश की माँ, करम की डाल रख दे। आज उसे लगाने का दिल नही है।"

दो

गणेश भूया के पास दस कट्ठा जमीन के अलावा और कुछ नही है। इस दुनिया मे अपने लोग कहने को दो बेटियाँ और तीन दामाद हैं। बड़ी बेटी

की मृत्यु हो चुकी है। लड़कियाँ इस दस कट्ठा जमीन का बराबर हिस्सा पायेंगी। सुनने में यह बात कितनी हास्यास्पद लगती है, पर यही दस कट्ठा जमीन ही वक्त पड़ने पर काम आयी। गणेश की बुद्धि काम नहीं करती। उसका छोटा दामाद कदमवेल खाली में पप सेट चलाता है। उसने कहा—"सामने से बस रोड जाती है। अब इस जमीन की कीमत हो गयी है। सामने की तरफ तीन दुकानें निकाल देता हूँ। जो दुकान करना चाहेंगे, वे ही कमरे बनवा लेंगे और भाड़ा भी देंगे।"

बस रोड पर अगल-बगल है तीनों दुकानें। दो दुकानों में खाने की चीजें और चाय मिलती है और तीसरी पान की दुकान है। सुधानन्द सांतरा की बस यहां आकर रुकती है। सामने मंगलवार और शनिवार को हाट लगती है। महीने में एक दिन पशु-हाट लगती है। सुधानन्द सांतरा की दुकान में ही लोग चाय पीते हैं और खाना खाते हैं। बेहुला नदी को काटकर कोई सिंचाई-योजना पूरी की जायेगी। पुल भी बनेगा। सुधानन्द सांतरा और कमल हाजरा की "सांतरा ऐंड हाजरा बिल्डर्स कंपनी' को पुल बनाने का ठीका मिलेगा। सांतरा ने कह रखा है कि तब गणेश को अच्छी कीमत देकर यह दस कट्ठा जमीन वह खरीद लेगा। अवश्य ही वह गणेश की माँ को दिये गये कर्ज के पैसे उसमें से काट लेगा। गणेश अपनी पत्नी से कहता है "सुमी की माँ। सांतरा बाबू सेभाशा का कर्ज वसूल कर लेंगे। जमींदारी माया जब पारटी करने आता है तब उसका कोई मुका-बिला नहीं कर सकता।"

"क्यों ?"

"जब यहाँ की सजावट बढ़ेगी, जमावड़ा होगा, तो गणेश की जमीन का भी दाम बढ़ेगा, मगर बाबू मुझे समझा देगा कि देखो गणेश ! तुम्हारी माँ ने जो उधार लिया था, वह बढ़ते-बढ़ते बहुत हो चुका है। अब खाता में देखता हूँ तो पता चलता है, मुझसे तुम कुछ नहीं पाओगे। बल्कि जमीन का दाम काटकर मैं ही कुछ पाऊँगा।"

"कहते क्या हो ?"

"जो होना होगा, हो जायेगा। छोटे दामाद का खयाल है बाबू के साथ उसका एक समझौता है। वही समझ-बूझ कर जो अच्छा होगा, करेगा।

मैं सोच कर क्या करूँगा ? बाबू लोगों से तो उस दिन मुकाबिला नहीं कर पाया, जब कमर में जोर था, अब क्या खा के कर लूँगा। जो होना होगा, हो जायेगा।"

यामिनी बाबू की कोशिश से डायमड हार्बर से गाल ब्लाडर का आपरेशन कराकर लौटा है गणेश और घर मे कैद हो गया है। कुछ भी कर नही पा रहा है, वर्ना नियमित रूप से चटाई वगैरह बुनता रहता था।

यामिनी बाबू की बात सुनकर वह गहरी साँस लेता है। ऐसा आदमी चला गया। किसी तरह जाकर देखता हूँ हमारे नेता क्या कहते हैं—हमारे भूषण बाबू। काका कहकर मान देना तो दूर कभी झाँकने भी नही आते। अब तो वे तेभागा के महान नेता बन गये हैं। हमेशा ऐसा सिर ऊँचा करके घूमता है। जैसे मंत्री बन गया है। बाप तो तेभागा में नहीं मारा गया था, घर में खाट पर पड़ा-पड़ा मरा था। फिर भी माँ को पेंशन दिला दिया। चलता हूँ उसी के पास।

"रहने दो। तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नही है।"

"बाबू, तुम जाओगे ?"

"और कौन जायेगा ?"

"मीटिंग यहीं पर करना ठीक होगा। उन दिनों यहाँ इतने मकान नहीं थे। बांग्लादेश के लोग भी तब यहाँ नहीं आये थे। यहाँ तब धान के खेत थे। पुलिस ने चारों ओर से घेर रखा था, गोली चलाने वाली थी···"

"उन्हें सन्देह था कि यहाँ स्वदेश बाबू हो सकते हैं। पुलिस को उनकी तस्वीर नहीं मिली थी। इसी कारण उन्हें पकड़ नहीं पाती थी। सिर्फ सन्देहवश पकड़ा था।"

"ओह ! साहस भी था और भाग्य भी अच्छा लिखाकर आये थे। वह दृश्य देखकर लड़कियों ने शंख बजाना शुरू कर दिया और हम सभी दौड़ पड़े। पुलिस घबड़ा गयी। इस बीच स्वदेश बाबू निकल भागे।"

"और मैं तुम्हारे पुआल के ढेर में घुस गया। गणेश की पत्नी ने हँस कर कहा—मैं डर के मारे मरी जा रही थी कि कहीं तुम्हारी बीड़ी से पुआल मे आग न लग जाय। ओह ! मुँह मे हमेशा बीड़ी लगी रहती थी, आज भी वही हाल है। बीड़ी कंपनी का खूब फायदा करा रहे हो।"

"मुमी की माँ! यामिनी बाबू क्या कर रहे हैं? स्वदेश बाबू परलोक चले गये।"

"वही स्वदेश बाबू!"

"हाँ।"

"उस बार नहीं आये थे? तुम्ही गये थे।"

"हाँ, हाँ। उस दिन उन्होंने बहुत-सी बातें कहीं, हमने भी जो जी में था, कह डाला।" रसिक ओरॉव ने कहा—"बाबू, तुम लौट आओ, तुम्हारे बिना हम जिंदा ही मुर्दा के समान हो गये हैं। कितनी बातें करते थे वह। मगर उस बार सिर्फ इतना कहा—ठीक है। ऐसा ही करूँगा! पुरानी दोस्ती, पुराना प्यार कुछ भी नहीं भूले थे। पहले कभी उन्हें रोते नहीं देखा था। मगर उस बार आँखों में पानी सूखता ही न था। कुम ओरॉव, सरस्वती, चरण भूयाँ—सबकी बातें ढोकर ला रहा हूँ। उन्होंने भींच कर कलेजे से लगा लिया था। अद्भुत आदमी थे।"

"गणेश, एक मीटिंग तो करनी ही होगी।"

"जो कहोगे, करूँगा।"

"तेभागा की जिम्मेदारी, ठेकेदारी सब भूषण और उसके चेलों की है। कहता है, उस समय उन लोगों ने ही सब किया था।"

"हाँ, हाँ, सातरा का ताऊ और हाजरा का दादा मिलिटरी आगे-पीछे लेकर इस इलाके में घुसे थे। और वकील भेजा था यह देखने को कि एक-एक आदमी के खिलाफ पचीस-पचीस केस किये जाएँ। अब तो महान तेभागा का पर्व मनाने सातरा भी दौड़ता है और हाजरा भी। सुना है तेभागा की लड़ाई जिन्होंने लड़ी थी, उनके नाम बहुत पैसा आ रहा है। यह पैसे लाकर पारटी के गुंडों को दूध-मलाई खिलायेंगे, और क्या?"

"नहीं, मैंने तो सुना नहीं।"

"उनसे बोल। वे साँप की जात हैं, समझा! जिनके कारण इलाका छोड़कर भागे थे, उनकी मृत्यु पर मीटिंग करना हो, तो कर सकते हैं। मर ही तो गया है, और क्या?"

"उस बार स्वदेश बाबू के साथ उनकी भेंट हुई थी।"

"सुना है, भूषण उन्हें देखकर मुँह घुमा कर चला गया था, जैसे स्वदेश

बाबू के साथ बात करने से पारटी के दादा लोग उसे पारटी से निकाल देंगे।''

"हाँ, महान तेभागा का नारा लगाने में तो कोई रोक नहीं है, कोई बाधा नहीं है। चार लोग मारे गये थे। कितने ही इधर-उधर चले गये थे। जो अभी भी यहाँ जमीन पकड़े बैठे थे उन्हें भिखारी बनाकर रख दिया। बाकी सब खरीद-फरोख्त, खरीद-फरोख्त हो रहा है।"

"भूषण इतना हरामी है कि कहता है—'मैंने पारटी में सुना है कि स्वदेश बाबू तेभागा के दिनों में यहाँ से काफी पैसे ले गये थे।' मैंने कहा—'जो साला कहता है, वह सूअर का बच्चा है! कुत्ता है!"

"राज महल छोड़कर आया था, और मरा झोपड़ी में भयानक कष्ट उठाकर, वह पैसा मारकर ले गया था?"

"यामिनी बाबू, ऐसे लोग तो ऐसी बात करेंगे ही, जो रोज खुद किसानों को मिलने वाले लोन (ऋण) में से, बाढ़ और सूखे की मदद के पैसों में से, स्कूली बच्चों के लिए पावरोटी के पैसों में से, जहाँ से भी पाते हैं वहीं से पैसे मार रहे हैं। सब 'अपना हाथ जगन्नाथ'। इसीलिए तो अपनी तरह सभी को देखते हैं। भूषण की कोठी, राशन की दुकान, आटे की चक्की कहाँ से आई? तेभागा के समय बाबुओं का चमचा था, उसी को भुना रहा है।"

"हाँ, ठीक कह रहे हो।"

"उन्हें कहने जाओगे? उससे तो अच्छा है अपनी पारटी के हिरणमय बाबू से कहो। वह चुनाव में हार भले ही गये है, पर बहुत कम वोटों से हारे हैं। उन्हीं से पहले कहो। कोई न करे, तो तुम लोग खुद करो।"

"ठीक है। जाता हूँ।"

हिरण्य बिहारी मैती तेभागा के बहुत दिनों बाद तमलुक से स्कूल मास्टर बनकर आये। तब तक वे बहुत भावुक थे। अगस्त आंदोलन हुआ। आज तमलुक-स्वाधीन है, कल तमलुक फिर पराधीन। उन दिनों वे कांग्रेस और कम्युनिस्ट पारटी के घोर विरोधी थे। बहुत से और लोगों की तरह वे भी बिना गहराई से समझे ही कम्युनिस्ट-विरोधी थे।

जब वे मधुगंज आये तब भी एक दीर्घ रक्ताक्त युद्ध के चिह्न इन अचल

मे चारों ओर इसका रहे थे। उस समय हिसाब बहुत सीधा था। कांग्रेस थी उत्पीड़क और कम्युनिस्ट थे उत्पीडित। प्रत्येक जनपद मे बहुत से किसान, काश्तकार, खेतमजूर और दूसरे लोग पकड़े जा रहे थे, पीटे जा रहे थे, उनको उजाड़ा जा रहा था। फलस्वरूप, हिरण्य विहारी मैती की सहानुभूति तेजी से प्रताडित लोगों की तरफ हो गयी। और इसमें दो आदमियों की राय ने मदद पहुँचायी।

कदमयेलतला के माधव दास, उनके पिता गौरांग दास सभी पकड़े गये। इन्हें कमर में रस्सी बाँधकर पैदल ले जाते हुए उन्होंने देखा था और गौरांग बाबू को धुंधला-धुंधला पहचान भी रहे थे। 'तुम्हारा घर तो तमलुक मे है न ? तुम श्यामानंदपुर के शशांक दास के लड़के हो न ? मैं राधेहरि मैती का लड़का हूँ।"

दारोगा ने मंतव्य प्रकट किया—"आप जैसे मैट्रिक पास सज्जन ने इसे पहचान लिया। देखिए न, कैसे बुरे काम में लगे हुए थे ये लोग ? जितने सरकार-विरोधी काम हैं सब में···सब यही स्वदेश बाबू और मधुमय बाबू के उकसावे मे आकर कर रहे थे। फिर भी इनको होश नहीं आया है। अभी भी इनके मुँह मे वही हरिनाम है।"

गौरांग पूरे आस्तिक थे। कीर्तन भी अच्छा गाते थे। हिरण मैती के श्यामानंदपुर वाले घर पर वह कीर्तन ही गाने आये थे। तभी जनार्दन ने कहा था—"हमारा एक आदमी डायमड हार्बर मे रहता है। वह आ जाय तो मजा आ जाय। अच्छा गाता है।" फिर उत्सव समाप्त होने पर परिचय हुआ था—"यही गौराग दास है। कहा था न, अच्छा गाते हैं।"

इस घटना के कुछ साल बाद किसी और परिवेश में हिरण बाबू को गौरांग से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बाद में उनको समझ में आया कि घोर ईश्वर-भक्ति और तेभागा के किसान-आंदोलन में कोई विरोध नही है। सचमुच नही है। ईश्वर-भक्त होकर भी आदमी अन्याय के खिलाफ लड़ाई में उतर सकता है। मानव-जीवन किराये के मकान की तरह है। पहले उसमे एक-दो किरायेदार रहते हैं, फिर किरायेदार, उप-किरायेदार, अतिथि—इस तरह एक ही मकान सैकड़ो टुकड़ो मे विभक्त हो जाता है।

गौरांग और उनके साथी सीधे-सादे लोग थे। उनके अंतर में किराये-दार भी कम थे। हिरण देख रहे थे कि एक-एक आदमी आजकल कितने ही स्व-विरोधी और परस्पर विरोधी भावनाओं को मन में पाल रहा है।

जो भी हो, उन दिनों गौरांग ने दारोगा से कहा था—"थाने ले चलना है ले, चलो। जेल में डालना है, डालो। अपनी ओर से कोई कसर तो छोड़ी है नहीं तुमने। पर स्वदेश बाबू और मधुमय बाबू को तुम नहीं पा सकते। वे निकल गये हैं। पर फिर आयेंगे, यह जान लो।"

इस तरह के उद्धत वक्तव्य के उत्तर में अभ्यासवश दारोगा की बंदूक के कुंदे ने गौरांग के पाँव चूमे थे, फिर भी उनकी आँखों में डर की एक रेखा खिंच गई थी।

तब हिरणमय को लगा था कि भले ही अकथ्य अत्याचार हो रहा है काकद्वीप में, फिर भी जो लोग तेभागा की लड़ाई में बाहर से आये थे, उनके प्रति कृषकों के मन में बड़ी श्रद्धा है। वे दोनों फिर आयेंगे इस बात से दारोगा की आँखों में उभरे भय को भी उन्होंने लक्ष्य किया था।

यह एक घटना है। इसके बाद हाजरा के छह नायबों में से एक सत्य-नारायण के घर हिरण को आमंत्रित किया था अजमोहन बाबू ने। हिरण ने कहा था—"मैं खुद आया था बुलाने, यह बात किसी से मत कहियेगा, समझे? स्वदेश और मधुमय तो पकड़े नहीं गये। स्वदेश से मुझे बड़ा डर लगता है। इसीलिए।"

कोई कोई साबुन इस्तेमाल करने वालों का लावण्य दिन-प्रतिदिन बढ़ाता है। कोई-कोई बड़ी घटना दिन-प्रतिदिन दबती चली जाती है। कहिए, बदल जाती है। हिरण मैती जब मधुगंज आये थे तो स्वदेश बाबू तथा मधुमय बाबू के संबंध में जो कुछ सुना था, उससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि बाहर से आये उन कार्यकर्ताओं और संग्रामी नेताओं ने कभी कोई आत्मप्रचार नहीं किया। उन्होंने अपने लिए 'टेकनेम' और 'कवर' की बहुत अच्छी व्यवस्था की थी। एक ही आदमी अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से जाना जाता था।

बाद में वे दोनों, विशेषकर स्वदेश बाबू, कहाँ चले गये, कुछ पता न चला। कोई उनकी चर्चा भी नहीं करता था। काकद्वीप, बड़गाछी, बेहुला,

शामुकभांगा और कदमबेलतला की तस्वीरें बदलती जा रही थीं। जब बहुत दिनों बाद स्वदेश बाबू दुबारा पश्चिम बंगाल आये, तो वहाँ की हालत एकदम घिनौनी हो चुकी थी। उस आदमी के साथ क्या व्यवहार किया जाए, क्या वह फिर कुछ करने आया है, उसके बारे में पार्टी की राय क्या है— इन प्रश्नों से पीड़ित भूषण आदि ने स्वदेश बाबू से बात-चीत तक नहीं की।

हिरण मैती, यामिनी बेरा, रसिक, गणेश और पुराने कुछ साथियों ने स्वदेश बाबू की आवभगत की। काले पत्थर की चट्टान जैसे उस आदमी में, जिसके बाल एकदम सफेद हो चुके थे और जिसके होंठों पर हमेशा एक हँसी की रेखा खिंची रहती थी, कहीं पर एक आभिजात्य, एक सम्मानबोध और एक आत्मविश्वास था। भूषण आदि की अवहेलना उसे किसी प्रकार भी स्पर्श नहीं कर रही थी। वे कहीं छोटे होते जा रहे थे। शामुकभांगा जाकर वही आदमी रो पड़ा था। एक मुट्ठी मिट्टी हाथ में उठा ली उसने। रसिक ओरांव ने कुछ कहा। स्वदेश बाबू बोले—"यह स्वदेश की धूलि है रे रसिक।"

'स्वदेश की धूलि, जैसे सोने के कण' यह गाना बहुत पहले का है। उस गाने को इस अंचल में प्रचलित देखकर हिरण मैती बहुत चकित हुए थे। बाद में पता चला था यह गीत स्वदेश बाबू गाते थे। स्वदेशी युग और बाघा यतीन वगैरह के सशस्त्र आंदोलन के दिनों का गीत वह यहाँ गाते थे। वह आदमी खुद भी अपने जीवन के काकद्वीप अध्याय तक देश के इतिहास की एक धारा के साथ जुड़ा हुआ था। जमींदार घराने में जन्म। दादी के दोनों चाचा देश के श्रेष्ठ लोगों में थे। वहीं से त्याग और देशसेवा की दीक्षा मिली थी। उस दीक्षा के फलस्वरूप उस व्यक्ति का साम्यवादी होना, पिता की सारी जमीन को किसानों में बाँट देना युक्तियुक्त लगता है। उसके बाद किसान आंदोलन में काकद्वीप जाना, बाद के जीवन में लंबा अज्ञातवास, अपना परिचय बदल लेना यह भी युक्तियुक्त है और समझ में आता है। पर बाद वाले दिनेश दत्त को तो हिरण पहचानता न था। यहाँ जो आया था, वह तो स्वदेश बाबू थे।

अब बहुत उठा-पटक के बाद हिरण मैती भी अपरिचित और निःशेष

हो गये है। यामिनी बेरा उनके सामने बैठे हैं।

"सभा तो करनी ही होगी।"

"किसान कह रहे है।"

"मातंग वगैरह क्या कह रहे हैं?"

"नसीराम थोड़ी देर मुँह लटकाये बैठा रहा। बाद मे बोला—'भाई साहब। हम तो दूसरी पारटी मे हैं! फिर भी मन कह रहा है एक सभा तो होनी ही चाहिए। भूपण बाबू अगर गुस्सा न हो तो मैं सभा मे भाग लूँगा।"

"उनके बीच केशव थोडा जिम्मेदार है।" उसने कहा—"मीटिंग तो हम भी कर सकते हैं।"

यामिनी ने कहा—"तो इसका कुल मतलब यही है कि भूपण ही सब कुछ है।"

"इतने दिनों में यही समझे तुम। भूपण भूया की क्या बिसात जो अपने मन से कुछ करे। 'हाजरा एंड सांतरा बिल्डर्स' जो कहेंगे वही करना होगा।"

"उन दोनों की कचहरी जब जलायी गयी थी तब वह आदमी भी मौजूद था, इसका रिकार्ड है, मगर वह अकेला तो नही था। और भी बहुतेरे थे। उसने अकेले ही तो तेभागा किया नही था।"

"किसे क्या कहोगे? हमारा मुरली क्या कम दलाली कर रहा है? वह तो आजकल कलकत्ता ही रहता है।"

"भैया, दोप सभी का है। हमी क्या पक्के है, बोलिए? खुद भी तो दलाल हो गये हैं। राम का अनुदान श्याम को दिला रहे है। किसे कम कहें, किसे ज्यादा। और यह बात भी बहुत बड़ा सच है कि जिनके लिए तेभागा हुआ, वे नामी-गिरामी आदमी न थे, पर वे न होते तो लड़ाई भी न होती। खैर, वह तो जो होना था, हो गया। भूपण के ऊपर हम गुस्सा होते हैं, पर वर्गा रिकार्ड बनाकर कुछ लोगो को जमीनें मिली है, यह भी मानना पड़ेगा। बात तो सबकी अच्छी है, पर उन सब रिकार्डों मे भी देखता हूँ जाल की जाली बुनी हुई है। उस जाली में से छोटी-छोटी मछलियाँ नही निकल पा रही है, पर बड़े-बड़े मगरमच्छ पलक मारते निकल

जाते हैं। किसके डेढ़ एकड़ में मुश्किल हो रही है और किसके सौ बीघे छिपे रह जाते हैं, यह भी देख रहा हूँ। फिर भी यह बात तो सच है कि स्वदेश बाबू एक बड़े नेता थे। उनके मरने पर क्या एक मीटिंग भी नहीं होगी ?"

"नसीब का कुछ हुआ ?"

"आसानी से तो कुछ होगा नही। मैं भी मगर छोड़ूँगा नही। पीछे लगा हुआ हूँ। इस बार कलकत्ता के ललित बाबू को पकड़ा है। वह चाहें तो करा सकते हैं। और किसी के वश की बात नही है।"

"देखो, वह आदमी एक बड़ा संवाददाता है। उसकी थोड़ी इज्जत भी है। वह करा सकता है।"

"हाँ, इनके फोटो, जीवन के सारे विवरण, किसका क्या है, क्या चला गया सब सूचना दे आया हूँ।"

"देखो यामिनी, मुरली को आने दो। हमारी पारटी की ओर से ही सभा करनी होगी। पर मुरली, दीपक, राजीव, प्रमथ इन्हें बिना बताये नही हो सकती, समझे न ?"

"तो फिर देर नहीं होगी ?"

"देरी होने पर भी···चारों ओर से तैयारी करके ही करना ठीक होगा। मधुमय बाबू को ले आना अच्छा रहता।"

"उनकी हालत नही है घर से निकलने लायक। बहुत बीमार हैं। दमा बहुत तेज है। साँस लेना भी मुश्किल है।"

"तो फिर ?"

"हमारे गणेश, विपिन, नसीब···।"

"और भी बहुतेरे हैं, भैया।"

"थोड़ा समय लेकर अच्छी तरह करो।"

"देखता हूँ वह पारटी क्या कहती है। देर करने को मन नहीं कह रहा है। बाकी सब मीटिंग तो बड़ा तड़ातड़ कर लेते हैं।"

"पारटी तो तुम्हारे घर में ही है। लड़का ही भाषण देगा।"

"आनन्द उससे मेरी कोई बात नही होती।"

यामिनी का लड़का आनन्द कमल हाजरा के मुँह से 'तेभागा' शब्द

को बड़े मनोयोग से सुनाता है। बाप के मुँह से नहीं सुनना चाहता। कहता है—"तेभागा से तुम समझते हो रसिक, नसीब, गणेश, विपिन और ऐसे ही मुट्ठी-भर लोग और स्वदेश बाबू, मधुमय बाबू! उससे तो कुछ होना-जाना है नहीं। 'तेभागा' का मतलब हम समझते है—जिंदा किसान को बचाना।"

"बहुत अच्छा भाई! तुम्हारी बातें तुम समझो। पर काकद्वीप केस में जितने लोग पकड़े गये थे, बाद में जेल काटकर छूटे, जो अब टूटी-फूटी जिंदगी बिता रहे हैं, उनके जिंदा रहने की भी तो कोई व्यवस्था करनी होगी। सरस्वती के नाम से कितना कीर्तन होता है, पर उसके लड़के को उस दिन···वह भी दूसरे की कोशिश से···पर तुम लोगों ने क्या किया?"

"कहना ही पड़ेगा तो हाजरा और सांतरा से ही कहेंगे। भीख ही माँगनी होगी तो राजा के दरवाजे पर हाथ पसारेंगे। भिखारी के आगे क्यों?"

जो पारटी सरकार में है, उसका जो प्रतिनिधि पर्याप्त क्षमता रखता है, वह भी पारटी के नियमानुसार गंभीर चेहरे से सभी की बातें सुनता है। सामने बैठा हुआ भी मुखौटे के सहारे एक दूरी बनाये रहता है। फिर कहता है—"और लोगों से बातचीत किये बिना कुछ कहना मुश्किल है।"

सुधानन्द सांतरा और कमल हाजरा एक दूसरे के साले-बहनोई हैं। जमींदारी-उन्मूलन के पहले ही जमींदारों को बता दिया गया था कि बिल आ रहा है—हेड़ सँभालो, जमीन सँभालो, फिर पोखरी और बाँध बनाकर पानी भर देने पर उन जमीनों की कोई 'सीलिंग' नहीं रहेगी। फिर क्या था? धान के खेत रातोंरात तालाब बन गये। इस पर भी जमींदार बहुत दुःखी और उत्पीड़ित महसूस करते हैं। यही शोषित लोग अभी तक अपने कास्तकारों और रैयत को ठगते रहे, आपस में दीवानी और फौजदारी की गंगा-यमुना बहाते रहे। अब अचानक ये शोषित-पीड़ित मनुष्य के नियम के अनुसार एकताबद्ध होने की कोशिश कर रहे हैं।

इसी सुबुद्धि के परिणामस्वरूप कमल की बहन के साथ सुधानन्द का और सुधानन्द की बहन के साथ कमल का ब्याह किया गया। सुधानन्द

और कमरा के पिताओं को 'परिवार नियोजन' का ज्ञान न था। फलस्वरूप दोनों घरानों के अनेक बेटों-बेटियों के नाम पर धान के खेत थे।

इस प्रकार के ब्याह के फलस्वरूप सुधानन्द और कमल के बेटे-बेटियाँ, जो कलकत्ते में अंगरेजी माध्यम के स्कूलों-कालेजों में पढ़ते हैं—अपने मित्रों के सामने बहुत शर्मिंदगी महसूस करते हैं। जो मामा है वही फूफा और जो बुआ है वही मौसी। जो नानी हैं वही बुआ की सास। संबंधों की यह बड़ी कठिन जटिलता है। न वे इन संबंधों को समझ पाते हैं और न उनके दोस्त समझ पाते हैं। सुधानद की फैशनेबुल बेटी के मित्र उसके धोती-कुर्ता पहने बाप को देखकर कहते हैं—"ओह! ह्वाट ए फादर! ह्वाट ए बर्डेन यू मस्ट बी कैरिंग अपान योर यंग शोल्डर्स!"

सुधानन्द और कमल नहीं जानते हैं कि उनके रिश्तों की इस जटिलता ने उनकी संतानों के मन पर कैसी दुर्बोध जटिलता का निर्माण किया है। वे अपने बच्चों को पहचानते तक नहीं।

सुधानन्द और कमल की बहुएँ मधुगंज और कलकत्ता के बीच चकरघिन्नी बनी रहती हैं। दुर्गापूजा में सभी घर आते हैं और हालांकि उनके घर में जो पूजा होती है उसका विमोचन स्थानीय एम० एल० ए० करते हैं, फिर भी सुधानन्द के अनुसार दुर्गापूजा जैसी सामंती पूजा में वह विश्वास नहीं करते।

सुधानंद और कमल को यामिनी ने एक साथ जा पकड़ा। दोनों ही व्यक्तियों ने अपने पद और अवसर के अनुरूप गंभीरता बनाये रखते हुए सारी बातें सुनी। कमल के बैठक घर में ही आजकल पारटी की बैठकें होती है। जिस कुर्सी पर बैठकर कमल के पिता अपने नायब से हिसाब सुनते थे, उसी पर बैठकर प्रौढ़ कमल जनता की बातें सुनते हैं। मकान के सामने जहाँ पहले उनकी कचहरी थी, वहाँ अब नेताजी शिशु पार्क और विशेष अवसरों पर झंडा फहराने के लिए एक स्तंभ।

"मीटिंग करना चाहते हो?"

"तुम लोग क्या करते हो?"

सुधानन्द और कमल एक-दूसरे की ओर देखते हैं। दोनों ही परिवारों की बहुत-सी कचहरियाँ तेभागा आंदोलन के दौरान जला दी गयी थीं।

दोनों ही परिवार अपने मकान छोड़कर कलकत्ता भाग गये थे और वहीं रह गये थे। सब कुछ अकेले स्वदेश बाबू ने नहीं किया था। वह कोई जंगल के देवता तो थे नहीं। पर उन्हीं के नाम अभियोग ज्यादा था। इसी मकान के सामने किसान, काश्तकार और खेत मजूर जमा थे और इसी दालान में किसान समिति का दफ्तर था। जमीन बाँटी जा रही थी। वृद्ध गंभीर दास ने पूछा था—"वे तो भाग गये। अब इस मकान और दालान का क्या होगा?" संन्यासी बाबू ने कहा—"तोड़ दो मकान।" पर मधुमय बाबू ने कहा था—"तोड़ेंगे क्यों? यहाँ हम हस्पताल बनायेंगे।"

सुधानंद साँस भर कर कहता है—"स्वदेश बाबू के बारे में मीटिंग करने की बात कर रहे हैं, यामिनी बाबू, पर उस बारे में हम कुछ नहीं कर सकते। पता नहीं सैद्धांतिक रूप से ऐसी मीटिंग हमें करना भी चाहिए या नहीं।"

"उन्होंने तेभागा आन्दोलन में हिस्सा लिया था।"

"किसानों के साथ वे भी थे।"

"पर वे इस अंचल के प्रमुख नेता थे।"

"और भी नेता थे। इसके अलावा वे आन्दोलन को गलत रास्ते पर ले गये थे।"

"पर जो कुछ हुआ था सब पारटी के निर्देश से हुआ था। पारटी ने ही उन्हें यहाँ भेजा था।"

"वह सब दंगा-फसाद, खून-खराबा··· खैर! उन दिनों तो हम पारटी में थे नहीं। कुछ सालों से हैं। और तेभागा आन्दोलन के लिए हमारे मन में आदर का भाव भी है। पर स्वदेश बाबू··· वे तो पुरानी पारटी में ही रह गये थे···"

"बारह-चौदह साल उन्हें गुमनाम होकर दूसरी जगह रहना पड़ा था।"

"यहाँ आये भी नहीं।"

"आते तो मारे जाते।"

"बाद में भी··· छोड़िए। इस मामले में कलकत्ता से पूछना पड़ेगा, जन साधारण की राय लेनी होगी। अगर सभी चाहेंगे तो होगी मीटिंग।"

"समझा। तो फिर हमी करते हैं।"

"ऐसा करना क्या ठीक होगा ? तुम लोग भी अब फ्रंट में हो। अलग से मीटिंग करना मेरे हिसाब से हमारी एकता बनाये रखने की नीति के अनुकूल नहीं होगा।"

"समझा।"

"सारे काम भावुकता के जोर से नहीं होते।"

यामिनी दुबारा हिरण मैती के पास गया, जहाँ पर उनका जोर था, उनकी ताकत थी, वहाँ भी अब वे फालतू हो गये हैं। गरीब लोगों को भी क्या दोष दोगे यामिनी, उन्हें जहाँ थोड़ी सुविधा मिलेगी, बेकारी-भत्ता, किसान-भत्ता जैसी चीजें पाने की आशा होगी, उधर ही जायेगा गरीब।"

"चन्द्रनाथ बाबू के नाम पर इतना शोरगुल किया इन लोगो ने तब तो हमे बुलाया नही।"

"तब हम फ्रंट में नही थे।...तो फिर क्या किया जाय ?"

"हम कुछ करने चलें और हास्यास्पद बनें, तो बड़ा अपमान महसूस होगा।"

"नहीं, नही इस तरह करने से नही चलेगा। मुरली को आने दो। कलकत्ता खबर भेजो। मीटिंग तो हम करेंगे ही। हमको-तुमको कौन याद रखेगा। पर वह आदमी इतने दिनो से यहाँ नही है, फिर भी लोग उसे भूले नही हैं।"

"जो कहा था वही हुआ। हमे दो-चार दिन सबर करना होगा।"

"ठीक है।"

यामिनी का दिल टूट जाता है। इतना डर-डर कर चलना होगा? वह आदमी जब तक जिंदा था कोई उसका नाम नही लेता था। जिस-तिस के नाम पर रोज सभाएँ होती हैं, पर उसके नाम पर सभा करने में इतना डर?

हिरण मैती और यामिनी बेरा एक-दूसरे के मन की बात समझते हैं। हिरण ने कहा—वह अपना नाम एक-एक अंगुल जमीन पर लिख गया है। आज यह जगह भी पहले जैसी नही रही। पुराने लोगो मे से कितने मर-खप गये। कितने ही लोग बदल गये। कितने ही नये लोग आ गये। फिर

भी उस आदमी का नाम दुबारा लेने में सभी को इतना डर। ये तो जानते है कि ये जो कुछ कर रहे हैं, वह ठीक नहीं है। जो चल रहा है, वह ठीक नही है।

"खूब जानते है।"

"ये लोग जनता को ऐसे किसी आदमी का नाम जानने देना नहीं चाहते जिसने राजनीति से कोई फायदा न उठाया हो। इनसे, सांतरा और हाजरा से, और क्या आशा कर सकते है!"

"अच्छा भैया, अब घर चलता हूँ। भाग-भाग के बुरी तरह थक गया हूँ, बड़ा हैरान हुआ।"

"ठीक है।"

"आदमी का मन भी खूब है! अगर तुरत-फुरत कुछ न किया जाय, तो कल ही सबकुछ भूलकर लोग बैठ जायेंगे।"

"हाँ, है तो।"

यामिनी उठ खड़ा होता है। हिरण मैती दरवाजे तक उसे छोड़ने जाता है। फिर अचानक उदासी से हँसकर कहता है—"उन दिनों तो मैंने उन्हें देखा न था। तुम लोगों ने उन्हें देखा था?"

"हर इलाका एक या दो लोगों के जिम्मे था। बेहुला की तरफ उनसे मुलाकात हुई थी, अच्छी तरह देखा है।"

"वह एक गीत गाते थे···। अगर उस दिन वह गाना कोई गा पाता···।"

"'स्वदेश की धूलि, जैसे सोने के कण।' पता नहीं इस गाने को अब कोई जानता भी है या नहीं।"

हिरण को लगा अपने देश की धूलि को सोने के कण मानने जैसे आवेग से पूर्ण देशप्रेम जिनके दिल में है, ऐसे लोग क्या कम नहीं होते जा रहे है? नहीं, ऐसे लोग हैं कहीं जरूर, मगर ठप्पे वाली पारटियों के बाहर हैं वे लोग, जिन्हें आज भी हिरण वगैरह नहीं पहचानते।

तभी अचानक फिर बारिश हो गयी।

तीन

बारिश लगातार हो रही है।

दूसरे दिन रसिक ओरांव यामिनी बाबू के घर आया। यामिनी ने जो कुछ पिछले दिन हुआ था, वह सब उसे आदि अंत से तक सुना दिया। रसिक खूब शांत होकर सारी बातें सुनता रहा। बीच-बीच में सिर हिलाता रहा।

हाँ, वह सब समझ रहा था। अब सब कुछ सिर्फ यामिनी बेरा, या हिरण मैती या सुधानंद सांतरा या कमल हाजरा के ही हाथों में नहीं है। सब कुछ किसी के हाथ में नहीं है। सभी के हाथ में थोड़ा-थोड़ा है। उस थोड़े-थोड़े को लेकर जो जैसा समझ रहा है, वैसा करेगा। ओ मन! रसिक ओरांव के मन! तुम कितने समझदार हो, कितनी दूर जाता है तुम्हारा दिमाग! किसी के हाथ में कुछ नहीं है। पर बाहर से देखो तो लगता है कि सब के पास सब कुछ है। किसी के पास कम, किसी के पास ज्यादा। इनके पास घर-द्वार, परिवार-गृहस्थी, पेट का अन्न, शरीर पर वस्त्र सभी कुछ है। किसी के पास कम, तो किसी के पास ज्यादा। किसी के पास करने को बहुत-सी मीटिंगें हैं, बहुत तरह के जरूरी काम हैं और ढेर सारा पावर है, किसी के पास मीटिंग—जरूरी काम और पावर सब कुछ बहुत कम हैं।

फिर भी ओ मन! रसिक ओरांव के मन! तुम तो उमड़ी हुई बेहुला नदी के शांत जल में तैरती हुई उस बड़ी मछली की आंखों की तरह स्थिर और ज्ञानी आंखों से सब कुछ देख रहे हो। बाहर से देखने पर लगता है इनके पास सब कुछ है, पर दर-असल कुछ भी नहीं है। रसिक ओरांव के घर में पानी में भीगा करम के पेड़ का चारा है, पर उनके पास वह भी नहीं है।

"तुम और क्या करोगे यामिनी बाबू, बोलो? कोशिश तो कर ली बहुत।"

"देखता हूँ, तुम अभी भी निराश नहीं हो।"

"देखो! अच्छा, एक बीड़ी तो देना।"

"लो, धराओ।"

"वही चकमक और मशाल हाथ में लेना होगा। माचिस का दिन-पर-दिन कितना दाम होता जा रहा है। और सुना, उस दिन हाट में बारहमासी बैंगन दो रुपये के भाव लिया।"

"यह भी कोई कहने की बात है।"

दोनों बीड़ी के कश खींचने लगते है। कुछ बोलते नही। यामिनी को लगता है उसे रसिक से क्षमा माँगनी चाहिए। उसे जो करना था, वह नहीं कर सका था।

रसिक के मन में क्षमा उमड़ रही थी। ओ मन! रसिक ओरांव के मन! यामिनी बाबू को क्षमा कर दो। अखबार में अचानक स्वदेश बाबू के मरने की खबर पढ़कर यामिनी बाबू का मन बहुत उछल-कूद मचाने लगा था। इसीलिए सारा दिन भाग-दौड़ करके मरते-खपते रहे। आज के बाद कल आयेगा, कल के बाद परसों। और कुछ दिन बीत जायेंगे। तब शायद इतनी व्यग्रता नहीं रहेगी। न रहे, तुम यामिनी बाबू को क्षमा कर देना। ओ मेरे मन! रसिक के मन! तुम्हें कौन समझता है, बोलो?

"अच्छा बाबू चलता हूँ।"

"अच्छा।"

रसिक जाता है कदमबेलतला, रसिक जाता है शामुकभांगा, रसिक महाजन से पैसे उधार लेता है। रसिक कलकत्ते के राशन की दुकान से भागकर आया मोटा चावल, मसूर की दाल और एक बहुत बड़ी हंडिया खरीदता है। जो देखता है वही चकित होता है, पूछता है—"क्यों भाई? आज तुम्हारे घर कुछ है क्या?

"कुछ नही दादा! देश को भूल गया हूँ, पर अपनी जात का स्वभाव तो नही भूला हूँ। महाजन के घर से उधार पैसे लाया हूँ। आज मियाँ-बीवी पेट भर के खायेंगे।"

रसिक अपने पीले दाँत निकालकर हहाकर हँसता है। काली बहुत चकित होगी। हो सकता है नाराज भी हो जाय। होने दो! दस दिन तुम्हारा तो एक दिन मेरा भी तो होगा। तुम्हारी बात रोज सुनता हूँ, तो एक दिन मेरी बात क्यों नही सुनोगी? हमी दो जने तो हैं। मान-मनौ-

बल करके तो चलना ही होगा । अब देखें, आकाश क्या कहता है !

शाम से ही आसमान काला हो गया। झिमझिम वृष्टि शुरू हो गई। बूंदों की झालर जैसे हवा में लहराने लगी। काली से जल्दी-जल्दी आँगन साफ करवाया था रसिक ने। अब फिर कीचड़-कीचड़ हो गया।

शामुकभांगा से नसीब सबसे पहले आया। फटा हुआ छाता सिर पर ताने वह हाथ पकड़कर विपिन को साथ लाया था। कदमबेलतला से माधव आया और गणेश आया सबसे पीछे। अभी भी वह तेजी से चल नहीं पाता।

विपिन आँख से नहीं देख पाता तो उसने छूकर सबके हाथ-मुंह थपथपाये।

"क्या बात है श्रीरांव ? कैसे बुलाया ?"

"अभी बताता हूँ, नसीब। थोड़ी चाय खरीद कर आता हूँ।"

"मैं लाता हूँ।"

काली हंडिया नसीब के हाथों में पकड़ाती है "जरा गरम पानी से धो लेना, चाय गरम रहेगी," कहती है।

"दीजिए।"

चाय आती है। काली सभी को चाय देती है। सभी थोड़ा कौतूहल से रसिक की ओर ताक रहे हैं। रसिक माथे पर बल डाले किसी सोच में डूबा हुआ है।

माधव बोला—"सभी यहाँ इकट्ठा होकर एक साथ खाना-पीना करेंगे, सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई। यामिनी बाबू आयेंगे न ?"

रसिक आखिरी कश खींचकर बीड़ी फेंक देता है। फिर थोड़ा हँसकर बोला—"नहीं, उनसे नहीं कहा है···हमी लोग···।"

"स्वदेश बाबू के लिए, रसिक ?"

"तुम ठीक कह रहे हो ! स्वदेश बाबू के लिए। यामिनी बाबू मीटिंग नहीं कर पा रहे हैं। सभी तैयार नहीं हो रहे हैं, जब तैयार होंगे, तब मीटिंग होगी। मेरे मन में बहुत उथल-पुथल हो रही थी। मेरी औकात ही कितनी है ? सोचता रहा, सोचता रहा। मन में आया कि स्वदेश बाबू की जयकार करने पर वह कहते थे—"मैंने तो कुछ किया नहीं। सब तुम्हीं

लोगों ने किया है···तुम्हारा ही है तेभागा···।"

"हाँ खूब याद है।"

"इसीलिए सोचा हम छह आदमी तो है। सभी एक साथ बैठेंगे···।

इसके बाद सभी चुप हो जाते है। निस्तब्धता और भी धनी होती जाती है। वह निस्तब्धता जैसे उन्हें एक दूसरे के नजदीक खींच रही थी। वे फिर से जैसे एक ही रहे थे। अंधा, दुबला-पतला, डरपोक विपिन माली किसी और विपिन माली की याद करता है। जो नाव चलाता था-अद्भुत क्षमता और वेग से, जो पानी के जानवरों की पर्वाह किये बिना, सरस्वती वगैरह के शहीद होने के दिन, दांत में कटार दबाये एक सांस मे बेहुला नदी पार कर गया था। हवाई चप्पलें बेचने वाला दु:खी और शांत माधव दास ताकता है रस्सी बुनने वाले नसीब के जर्जर शरीर की ओर। अतीत मे एक दूसरा माधव, दूसरा नसीब जमीदार के दलाल महानन्द गिरि को ले गये थे बेहुला के तटपर और उसे काटकर नदी में डाल दिया था। दुर्बल, रुग्ण गणेश नही, वह कोई और दुर्दम गणेश था, जो रसिक ओरांव और काली को खीचकर ले गया था कदमवेलतला के मैदान मे और कहा था—"देखो, एक कुश नही, सैकड़ों कुश यहां जान की बाजी लगाये हुए हैं।"

इसी प्रकार स्वदेश बाबू वापस आ रहे है। बस से उतरते है, नदी पार करते हैं। थोड़ा पैदल चलते हैं, छोटी नदी बेहुला मे नाव पर सवार होते है। मिलिटरी पोशाक, कंधे पर पड़े थैले में बन्दूक, काली चट्टान से काटकर बनायी गयी प्रतिमा जैसे, बाघ जैसा चेहरा। खेतों की मेंड़ों परसे कूदते-फलांगते वह चले आ रहे है। आ पहुँचते है तो कहते है—"कामरेड यह सब तुम लोगों ने किया है। वीर काश्तकार और खेत-मजूर कामरेड! यह लड़ाई तुम्हारी है। तुम्ही ने···"

विपिन अस्फुट स्वर मे कहता है—"उन दिनो माइक कहां थी? और भोंपू की भी जरूरत नही पड़ती थी। वह बोलते थे तो एक हजार आदमी सुनते थे।"

रसिक खँखार कर गला साफ करता है। धीमी आवाज में बोलता है—यह जो करम का पेड़ है; इसे लगाने पर बड़ा पुण्य मिलता है। बहुत मेहनत से लाया हूँ। मीटिंग जब होगी तब होगी। उनकी याद में यह पेड़

हम आँगन में लगायेंगे। सभी एक साथ दाल-भात खायेंगे और रात-भर जाग कर बातें करेंगे।

सभी सिर हिलाते हैं। यह तो बहुत अच्छी बात है, ओरांव! इससे बड़ी बात क्या हो सकती है? इस तरह कौन किसे याद करता है? करम पेड़, पवित्र पेड़ है। पेड़ बड़ा होगा। कुश की तरह लड़के पूजा के लिए डाल काटकर ले जायेंगे। पेड़ लगाने के दिन हम पांच लोग और ओरांइन यहाँ इकट्ठा हुए, ये हमने उनको याद की थी, बाद के कुश यह बात न भी जानें तो क्या?

नसीब जानकर आँखों से आकाश की ओर देखता है और कहता है, "पेड़ अभी रोप दो। शाबल कहाँ है?"

नसीब ने शाबल से गढ़ा खोदा। रसिक ने कहा "सभी लोग मिल-कर डाल को थामो, मैं जमीन में रोपता हूँ।"

सभी आगे बढ़ते है। विपिन का हाथ पकड़कर डाल से छुलाना पड़ता है। माधव हँसकर कहता है—"अगर स्वदेश बाबू देखते तो कहते—गाना नहीं होगा?"

पोपले—मुह से हँसते हुए विपिन ने कहा—"स्वदेश की धूलि, जैसे सोने के कण—गाने को कहते।"

रसिक ओरांव ने बड़े जतन से डाल की जड़ को गहरे गढ़े में बिठाया और बुदबुदाया—स्वदेश बाबू! हम तुम्हें याद करते है।

लाइफर

मागन संथाल लाइफर* था। बड़सुली मौजा मे जहाँ उसका घर है, कोई थाना नही था। निकटतम थाना चामारी में था। उन दिनों चामारी थाने की इमारत नीचे तो पक्की थी, पर छाजन फूस की थी। कालीपूजा से ही जो वृष्टि शुरू हुई थी, वह बंद होने का नाम भी नही ले रही थी। पर्व की खुशी मिट्टी कीचड़ में सन कर चौपट हो रही थी। कलकल करता हुआ जल पोखरो-तालाबों में भर रहा था। ऐसी वृष्टि बहुत दिनों से नहीं देखी गयी थी। दारोगा ने कहा—"ओह! इतना पानी, पर जब जरूरत थी तब एक बूंद नहीं।" गाँव मे दारोगा जी की खेती-बेती है। वृष्टि को देखकर उन्हें और भी बातें याद आ रही थी। गरीब इलाके में रहने से कोई आमदनी होती नही। उधर गौशाला भी नही छायी जा सकी है। ढोर-डंगर दिन-रात पानी मे भीजेंगे।

सबेरे जब वर्षा कम हुई, तब भी आकाश का रंग धूसर ही था। थाने के पीछे ही दारोगा जी का आवास है। सो दरवाजा खोलकर बाहर आते ही उन्होंने देखा कमरे के सामने ढेर सारे संथाल इकट्ठा हैं। सभी परिचित चेहरे। पर्व की खुशी में कुछ ढोकर दारोगा को नजर करने को ले आये हैं या नहीं, यही बात वह सोच रहे थे।

*आजन्म कारावास का कैदी।

अब वह उसको ठेल रहा है और दूसरा तीसरे को 'तू बोल', 'नही तू बोल'। क्या, मामला क्या है?

"क्यों रे जगनू, क्या है ?"

मागन सथाल आगे आया। बाप रे! कैसी लाल आँखें हो रही हैं और चेहरा एकदम बदला-बदला।

"बाबू, अपनी बहू को काट दिया मैंने। ले आया हूँ। अब जो करना हो, करो। मैं ही बहगी पर लाद कर लाया हूँ। मेरी बहू थी और कौन लाता ?"

"क्यों, काटा क्यों ?"

"गुस्सा लग गया। दोनों ही झगड़ा कर रहे थे। झगड़े में ही बहुत गुस्सा लग गया। जितना ही कहता था हाथ में टाँगी है, मुझे गुस्सा मत दिला। टाँगी भी शान धारा के उसी दिन लाया था। मैं जितना मना करता वह उतना ही चीखती —*'क्या करेगा ? काटेगा ? से असल बाप का हो तो* काट दे!' बस, बाबू, क्या कहूँ ?"

"तो क्या सचमुच काट दिया अपनी बहू को ?"

"हाँ, काट दिया।"

जैसे मागन की स्वीकारोक्ति और वहाँ उपस्थित संथालों का मौन पर्याप्त नही था कि मागन बहिंगा में लटकायी गयी टोकरियाँ खोलकर दिखाने चला। दारोगा आतंकित होकर बोले—"नही, नही। रहने दो।"

दारोगा बाबू बड़े दुःखी हुए। वृष्टि रुकने से चारों ओर शांति और स्निग्धता बिखरी हुई थी। नयानजूली से इतनी ढेर-सी चिंगड़ी मछलियाँ पकड़ी गयी हैं, उनका शोखेदार बनना था। काली पूजा भी कोई पूजा है, 'बाँधना' भी कोई पर्व है। गोशाला की सफाई, जानवरों को नहलाना-धुलाना। सारे काम करवाने को हैं। दारोगा जी का मन बड़ा उत्फुल्ल था। ऐसे पवित्र समय में किसी ने दूसरे की बकरी चुरा कर काट ली या किसी की साइकिल चोरी हो गयी—इसकी भी आशा नहीं की थी दारोगा जी ने। और देखो मजा! मागन की निःसंतान युवती पत्नी दो टुकड़े होकर दो टोकरियों में लदकर आ गयी पर्व की पवित्रता और दारोगा जी की शांति भंग करने।

दारोगा बाबू का मुँह टेढा हो गया। साला थाना अगर इतना पास न होता तो ऐसा झमेला क्यों होता सुबह-सुबह ?

"अंदर आओ।"

दारोगा बाबू ने आदेश दिया था और ऐसे मौकों पर जो भी करणीय था सब किया था बेमन से। मागन ही क्यों, बड़शूली मौजे के एक-एक संथाल को वह पहचानते हैं। उनमें से कोई भी किसी झमेले में नही पड़ता। न कोई उन्हें छेड़ता है और न वे किसी के रास्ते मे आते हैं। किसी के पास एक टुकडा जमीन है—किसी के पास नही है। उसी को लेकर दिन रात खटते रहते हैं। हमेशा खुश रहते हैं। मागन तो औरों से भी ज्यादा शांत है। कभी भी कोई···।

मागन के चाचा जगनू ने थोड़े से रुपये और एक जोड़ा मुरगी दारोगा जी के चरणों में रखते हुए कहा—"जो ठीक समझो करो, बाबू। उसके माँ-बाप नही हैं। गुस्सा करना तो इसके स्वभाव मे ही नही है। कहीं फाँसी न लगे, इसी से इसकी चाची बहुत रो रही है।"

फाँसी तो उसकी होती ही। कम-से-कम मागन ने तो जैसे फाँसी के लिए ही कोशिश की थी। सरकारी वकील तक ने उसे समझाया था कि ऐसा-ऐसा कहना, बच जायेगा। क्यों ऐसा कहूँ ? मेरी बहू बदमाश नही थी, कभी भी काम से जी नही चुराया। क्यो कहूँ मैं झूठ ?

पर अंततः उसे आजीवन कारावास हुआ, फाँसी के फंदे से बच गया। इसमें दारोगा बाबू का भी योगदान था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि मागन बहुत शांत स्वभाव का आदमी है। कभी किसी दगा-फसाद मे नही रहा। किसी से मार-पीट भी कभी नही की। उस तरह के आदमी ने निश्चय ही भयानक रूप से उत्तेजित होकर क्षणिक आवेश मे ऐसा किया होगा। मागन की मृत स्त्री अत्यंत कर्कशा थी और उसे तरह हर से परेशान किया करती थी।

इतना काफी था। सत्ताइस रुपये और एक जोड़ा मुरगियों के बदले मे इससे ज्यादा और क्या लिखते दारोगा जी ?

दारोगा जी ने सिपाही से कहा था—"अजीब लोग हैं ये संथाल भी। खून करेंगे तो खुद आकर थाने में हाजिर हो जायेंगे। इनकी न्याय चेतना

और लोगों से अलग है।"

मागन को आजन्म कारावास हुआ। वह एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित किया जाकर घूमता रहा। जेल में उसका रिकार्ड बहुत अच्छा था। पाँवों में बेड़ी पहने वह जेल के बगीचे में काम करता, जेलर के घर ड्यूटी देता। चौदह बरस तक बेड़ी पहनकर चलते-चलते—मागन को इस बात का ज्ञान हो गया था कि वह अपने पाँव कितना फैला सकता है।

मागन जब जेल से छूटा तो पहले वह बड़गूली जायेगा यही सोचकर चला था। जब पानघाट से चामारी तक बस चलने लगी है। मेन रोड के दोनों ओर कितने ही मकान बन गये हैं। सब कुछ एकदम बदला-बदला लग रहा है। चामारी मे उतर कर वह कहाँ जायेगा? यह चामारी भी तो उसके लिए एकदम अपरिचित है।

"भाई, थाना कहाँ है, बता सकते हो?"

"अरे! तुम तो थाने के सामने ही खड़े हो।"

"बाप रे! इतना बड़ा थाना।"

चामारी अब सर्किल का बड़ा थाना बन गया है। थाना बहुत लम्बी-चौड़ी जमीन के चारों तरफ चहारदीवारी से घेरकर बना है। थाने की दोतल्ला इमारत है, पक्की। ऊपर सर्किल इंस्पेक्टर का आवास है। थाना माने सिपाही-दारोगा, खाकी वर्दी।

बिना सोचे-समझे मागन पाँव घसीटते हुए थाने के अदर चला गया था। दुनिया गोल है, यह सही साबित हुआ। उस इलाके के वही दारोगा जी जिनके पास मागन का केस आया था, अब कितने ही थानों में घूमते-फिरते, उम्र और पद में इजाफा करके सर्किल इंस्पेक्टर बन कर वहीं फिर आ गये थे। मागन को देखते ही उन्होंने पहचान लिया। मागन उनके लिए बड़ा शुभ प्रमाणित हुआ था। क्योंकि मागन का चालान कराने के बाद ही दो ऐसी घटनायें घटी थीं, जिनकी तफशीश में दारोगा जी को बड़ी ख्याति मिली थी और तरक्की भी। पोस्ट आफिस में डकैती और सिंचाई के पानी को लेकर हुए दंगे में दारोगा जी ने अपना चमत्कार दिखाया था।

"मागन हो न?"

"हाँ, बाबू।"

मागन के लिए उसी दारोगा से मुलाकात एकदम स्वाभाविक था। दुनिया गोल है, प्यारे !

"बाबू घर जा रहा हूँ।"

"घर···कहाँ था तुम्हारा घर ?"

"बड़शूली—माझीपाड़ा।"

बाबू की आँखों में सहानभूति उभरी, बोले—"घर जा कर क्या करेगा ? वे लोग तो अब वहाँ नही है। कई साल पहले कही चले गये।"

"कहाँ गये, बाबू ?"

"कौन जाने।"

"क्यों चले गये ?"

"जमींदारों ने बसाया था, उन्होंने ही उजाड़ दिया। तेरे चालान होने के बाद उधर नकसली हवा चल पड़ी। माझी ही क्यों, डोम भी बड़े सरकश हो उठे थे। इस बाबू के घर आग लगाओ, उस जमींदार के खेत काटो। बाद में जमींदारों ने केस कर के उन्हें उजाड़ दिया।"

"सभी को ?"

"हाँ रे।"

दारोगा बाबू ने उस प्रसंग को वही खत्म कर दिया। सथाल बहुत बाद मे उजाडे गये थे और उसमें दारोगा जी का योगदान मामूली नहीं था। पर उन बातों को दोहराने का फायदा भी क्या ?

"घर भी नही है ?"

"आदमी न रहें तो क्या घर रहते हैं ? अब तो वहाँ सब नये लोग आ गये हैं। जाकर देख आ।"

"अच्छा ! बाबू, जरा पानी मिलेगा ?"

"जा, बगीचे में पंप है। पी ले।"

बागीचे में पंप लगा हुआ था। हैंडिल छूते ही पानी की धार फूटती थी। पहले कुआँ था। पानी पीकर मागन बाहर आ गया। थाने से थोड़ी दूर आते ही उसकी चाल स्वाभाविक हो गयी। थाने में घुसने पर पाँव घसीटकर चल रहा था इस बात पर जैसे उसका ध्यान नही गया था,

वैसे ही इस बात पर भी नही गया कि अब वह अपनी स्वाभाविक चाल से चल रहा है।

बड़शूली तक वह पैदल ही गया। चौदह बरसों मे उसकी उम्र चालीस पार कर चुकी थी। वह बहुत बदल गया है, पर जन्म से ही जिस जगह से वह पूरी तरह परिचित था, वह जगह तो जैसे और ज्यादा बदल गयी थी। वे छातिम के पेड़ कहाँ गये, जिनके फूल संथाल लड़कियाँ अपने बालों में लगाती थी? छातूलाल की पान की दुकान अभी भी है। मागन उसके सामने खड़ा हो गया।

"क्या? पान खाना है?"

"नहीं, एक बीड़ी देना।"

"यह लो।"

छातूलाल ने उसे नही पहचाना। मागन ने भी कुछ न कहा। क्या कहता?

"कुछ कहना है?"

"बड़शूली जाना है।"

"बडशूली—?···तुम···तुम···।"

"मागन संथाल।"

"समझा। मगर वहाँ तो तुम लोगो का कोई भी नही है। कई साल पहले ही···"

मागन के भीतर सब कुछ जैसे चूर मार हो गया, कोई उत्साह नही रहा। अब बड़शूली जाकर भी क्या होगा? पर वह जाय भी कहाँ? आश्चर्य! रास्ते मे कोई पेड़ भी नही।

वह फिर चामारी की ओर लौट पड़ता है। हाँ, पोखरी तो आज भी है। उसे पुरानी बातें याद आती हैं। बहुत दिन पहले वह जब दानी को लेकर आ रहा था तो इमी पोखरी का पानी पिया था उन्होने। अब तो दानी का मुँह भी याद नहीं आता। क्रोध बडा चडाल है। उसे इतना क्रोध क्यों आया? और दानी ने भी उसे इतना क्रोध क्यों दिलाया? पल मे ही जैसे प्रलय हो गया। अगर उस दिन वह इतना गुस्सा न करता तो आज दानी जिंदा होती। वह भी अपनी बिरादरी के साथ होता। भले

ही गयी के साथ उसे भी उजाड़ा जाना। पर एक साथ तो रहने सब। इस तरह वह उन्हें खो तो न देता। दूसरे संथालों के साथ जाकर रहे वह या क्या करे? कुछ समझ में नहीं आ रहा था उसके। उसने पेट भरकर पानी पीया। थोड़ा पानी सिर पर भी उड़ेला।

पामारी पहुँचकर बस अड्डे पर उसने मुरमुरे खरीदे और एक पेड़ के नीचे आ बैठा। जेल कैसी जगह है! लगता है मागन को यह भी भूल गया है। मुरमुरे चार रुपये किलो! बाप रे!

दो-तीन दिन मागन पामारी के बाजार में घूमता रहा। बाजार में कोई संथाल नहीं आया। किससे पूछे वह? कहाँ जाय? आखीर में एक दुकानदार ने थाने में रिपोर्ट कर दी कि एक संथाल संदिग्ध परिस्थिति में बाजार में घूम रहा है। पुलिस पकड़कर उसे थाने ले गयी। पाँव घसीटता हुआ मागन थाने में हाजिर हुआ। सर्किल इंस्पेक्टर ने नाराज होकर बिना उसकी ओर देखे, रिपोर्ट पर नजर गड़ाये हुए पूछा—"क्यों रे! बाजार में क्यों घूम रहा है? डकैती करने का इरादा है क्या?"

कोई उत्तर न पाकर उन्होंने अपराधी की तरफ देखा।

"अरे मागन।"

"हाँ बाबू।"

"अभी तू यहीं है?"

"कहाँ जाऊँ?"

सर्किल इंस्पेक्टर उसकी तरफ ताकते रह गये। उनके दिमाग में एक गणित चलने लगी। संथाल। लाइफर। थाना—पुलिस से डरने वाला। विश्वासी। खूब खटने वाला। चाल-चलन अच्छी न होती तो जेल की मीयाद कई साल कम न होती। बटवाड़ी के छोटे थाने में सर्किल इंस्पेक्टर का साला नौकर न होने से परेशान है। सबसे बड़ा कष्ट है पानी का। थाने में कुआँ खोदा नहीं जा पा रहा है। जितना ही खोदो नीचे पत्थर ही पत्थर। ब्लास्टिंग करने पर भी पानी नहीं मिला। पानी का एकमात्र स्रोत है पंचायती कुआँ और बाँध।

"काम करेगा?"

"करूँगा।"

"कल भेज दूँगा। आज बागीचे की सफाई कर दे।"

कितने ही बरसों से मागन ने अपनी इच्छा से कुछ नहीं किया है। जो कहा जाता है, वह करता है। जेलर के बागीचे मे काम करता था। बागीचा शीशे की तरह चमकता था। बागीचे की निपुण हाथों सेवा करता था। "बाबू कूड़ा सब जला दूँ या गड्ढा बनाकर उसमे डाल दूँ ? खाद बन जायेगा।" इस तरह वह दोपहर तक खटता था। फिर लाइफ बॉय से मल-मलकर नहाता था। लोहे की थाली में भात खाता था। फिर पाँव घसीटता हुआ बागीचे मे जाता था। कृष्ण चूड़ा की छाया में गमछा बिछाता था और सोता था। साफ-सुथरे बागीचे की जमीन पर मागन के घिसटते हुए पाँवों के निशान चारों ओर होते थे। सोते हुए मागन को देखकर दारोगा बाबू सोचते थे—"जो भी हो, मैंने एक गरीब का उद्धार किया।"

दूसरे दिन मागन को जीप पर बैठाकर बटबाड़ी पहुँचा दिया गया। चारों ओर धान के खेत, क्यारियो जैसे। बटबाड़ी की जमीन सूखी है। अगहन महीना था। फिर भी धान के पौधे बीता भर से बड़े न थे। दूर पर रामगिरि पहाड की चोटी दीखती थी। सलाई नदी में से नहर निकलने की कोशिश बेकार हो गई थी। वहीं पर बाँध बाँध दिया गया था।

गाँव धूल से अटा पडा था। थाना भी। दारोगा जी की सलहज ने लाइफर, सुना तो चौंक पड़ी। दारोगा जी ने कहा—"लाइफर के अलावा कोई पेट के भात पर पानी भरेगा। महीने मे पाँच रुपये देना। आदमी सीधा है। मुँह में जुबान नही है। गाली-गुप्ता मत करना। देखना, बाद मे तुम्हें लगेगा इससे अच्छा आदमी पाना मुश्किल है।"

"बदली नही हुई तो मारे जायेंगे। न स्कूल, न और कुछ।" साले ने कहा।

"अरे भाई ! इस तरह का निर्वासन हमने भी झेला है। कुछ दिन और काटो। फिर जोड़बाड़ी मे रखवा दूँगा। जगह अच्छी है। स्कूल है। बिजली-पानी भी है।"

चामारी वापिस होने के पहले दारोगा बाबू मागन को कहते गये—

"देख मागन, अच्छी तरह से रहना। कोई असुविधा हो तो बाबू से या माँ जी से कहना।"

"अच्छा।"

दारोगा बाबू जीप पर सवार हुए तो बटबाड़ी के थानेदार यानी उनके साले ने एक हँड़िया जीप में रखवा दी। हँड़िया में बटबाड़ी के बने संदेश (मिष्ठान्न) थे। "आप आने वाले थे, सो मंगाकर रख लिया था।"

"जमाना बहुत बुरा है मेरे भाई, कोई दे तो ले लो। पर माँगना नहीं कुछ। जमाना बहुत बुरा है।"

"वह तो देख ही रहा हूँ। थाने पर आता भी कौन है। थाने पर किसी को भरोसा नहीं। सभी जानते हैं होगा वही जो दादा लोग चाहेंगे।"

"और कुछ ऊँचा-नीचा हो जाय तो पुलिस को गाली देंगे। जानते ही हो। खैर, मागन को लिये जाता हूँ।"

"यह पाँव घसीटकर क्यों चलता है?"

"लाइफर था···अभ्यास हो गया है, बैसे चराने का। अच्छा रेणु, चलता हूँ। पति के साथ अभी कुछ दिन और निर्वासन भोग लो? फिर दीदी की तरह तुम्हें भी सुख मिलेगा।"

"फिर आइयेगा।"

उनके जाने के बाद छोटे दारोगा ने मागन को पुकारा—"चलो भाई, तुम्हें तुम्हारा कमरा दिखा दूँ। यहाँ तो एक बूंद पानी नहीं है, पर बागीचा कितना बड़ा है।"

बागीचे में ही एक छोटा-सा कमरा था, "रहने के लिए बुरा नहीं है। पर पानी कुएँ से लाना होगा। चलो दिखा देता हूँ। पानी की बड़ी तकलीफ है। गर्मियों में तो···"

मागन उनके पीछे-पीछे पाँव घसीटते हुए जाता है।

"बहंगी में पानी ले जाने में तुम्हें कोई असुविधा नहीं होगी। कुएँ से खाना बनाने और पीने का पानी लाना होगा और नहाने का पानी बाँध से। मैं तो बाँध पर ही चला जाता हूँ, पर तुम जानो औरतों के लिए···।"

मागन सिर हिलाता है। छोटे-छोटे डग भरता है। बटबाड़ी उसे चिरपरिचित बड़भूली जैसा लगता है। छोटे दारोगा ने जो-जो कहा है, वह

"कल भेज दूँगा। आज बागीचे की सफाई कर दे।"

कितने ही बरसों से मागन ने अपनी इच्छा से कुछ नहीं कहा जाता है, वह करता है। जेलर के बागीचे में बागीचा शीशे की तरह चमकता था। बागीचे की निपुण था। "बाबू कूड़ा सब जला दूँ या गड्ढा बनाकर उसमें जायेगा।" इस तरह वह दोपहर तक खटता था। फि मल-मलकर नहाता था। लोहे की थाली में भात खा घसीटता हुआ बागीचे में जाता था। कृष्ण चूड़ा बिछाता था और सोता था। साफ-सुथरे बागीचे की घिसटते हुए पाँवों के निशान चारों ओर होते थे। देखकर दारोगा बाबू सोचते थे—"जो भी हो, मैंने किया।"

दूसरे दिन मागन को जीप पर बैठाकर बटवा चारों ओर धान के खेत, क्यारियों जैसे। बटवा अगहन महीना था। फिर भी धान के पौधे की पर रामगिरि पहाड़ की चोटी दीखती थी। निकलने की कोशिश बेकार हो गई थी। यह था।

गाँव धूल से अटा पड़ा था। थाना भी लाइफर, सुना तो चौंक पड़ी। दारोगा जी ने कोई पेट के भात पर पानी भरेगा। महीने सीधा है। मुँह में जुबान नहीं है। गाली-गु तुम्हें लगेगा इससे अच्छा आदमी पाना मु

"बदली नहीं हुई तो मारे जायेंगे। कहा।

"अरे भाई! इस तरह का निर्द और काटो। फिर जोड़बाड़ी में रखवा बिजली-पानी भी है।"

चामारी वापिस होने के पहले

कैदी है, कैदी है मागन अभी भी। इसीलिए तो छोटे-छोटे डग भरता हुआ चलता है। थाना से बाँध तक और बाँध से थाना तक। पूरे रास्ते में उसके घिसटते हुए पाँवों के दाग है।

थानेदार के घर वह किसी से बात नही करता, सिपाहियों से भी नही। काम हो जाने पर सरकारी वन में चला जाता है। सरकार ने वहाँ यूकिलिप्टस के पेड़ लगा रखे है। चारों ओर पेड़ ही पेड़ है। कही कोई आदमी नही। मागन की समझ में नहीं आता कि वन मे घुसते ही वह क्यो लंबे-लंबे स्वाभाविक डग भरने लगता है?

इसी तरह जब वह वन में लंबे डग भरता विचर रहा होता है तो उसकी मुलाकात कभी-कभी फारेस्ट आफिसर से होती है, जिसे लोग 'बीट बाबू' कहते है। बीट बाबू थाने जाते हैं कभी-कभी। "मैं आपके पास आऊँगा। आप मेरे पास आइयेगा, नही तो इस उजाड़ मानवहीन स्थान पर कोई जिंदा रह सकता है?" बीट बाबू मागन को पहचानते हैं। मिल जाता है तो उनकी बातचीत होती है। बीट बाबू ही बात शुरू करते है।

"अरे मागन!"

"हाँ, बाबू!"

"कहाँ घूम रहा है? कोई गार्ड देखा?"

"नही बाबू।"

"सब बेटा, फाँकी मारते है।"

"पता नही, बाबू।"

"देखना, कोई पेड न काटे। देखते ही बाँधकर मेरे दफ्तर ले आना, समझे? रुपये मिलेंगे, इनाम।"

"अच्छा, बाबू।"

मागन को इस बात पर एकदम विश्वास नही होता कि वह किसी को पकड़कर वन विभाग के दफ्तर में ले जाय तो उसे रुपये मिलेंगे।

सिपाही भी कहते हैं—"मागन तू बड़ा बुद्धू है। जंगल मे घूमता है तो किसी को पेड काटते नही देखता?"

"कौन काटेगा पेड़, बाबू?"

"तेरे ही जात-भाई।"

सब कुछ करेगा।

बिना किसी प्रतिवाद के वह सब कुछ करता रहता है। बहंगी पर ढोकर पानी लाता है। स्नानघर और रसोईघर से नाली काटकर ले जाता है थोड़ी दूर तक, जिससे वह पानी सब्जी के पौधों के काम आ जाये। और फिर वह वहाँ तरह-तरह की सब्जियाँ उगाता है। देखो तो, जेल मे रहकर कैसी बढ़िया बागबानी सीख गया है। लोग कहते। मागन सब समय नीम-बेहोशी की हालत में काम करता जाता, जैसे किसी ने उस पर जादू-टोना कर दिया हो।

जेल जाने के पहले उसकी अपनी एक जिंदगी थी। जेल जाते समय वह बेहद दुःखी था, जैसे कोई आजाद पंछी जाल में फँस जाता है। उसने बड़े करुण स्वर मे अपने काका से कहा था—"पता नही कितने साल जेल में डालकर मेरी जान लेंगे। तुमने फाँसी क्यो नही लगने दी मुझे ?"

उसके काका का चेहरा दु.ख से दरक गया था। "हाय! यह लड़का कैसी बात कर रहा है ? तू क्या सिर्फ अपने लिए पैदा हुआ है ? तेरी माँ के बच्चे मर-मर जाते थे।" जमींदार की स्त्री ने कहा—'तुम इसे भगवान से माँग लो। इसका नाम मागन रख दो। यह जी जायेगा।' तू जीता रहेगा तो जेल से लौटेगा तो सही। हम फिर तेरा ब्याह करेंगे। तेरी संतान को गोद मे खेलायेंगे। हमारी छाती जुड़ायेगी। तू सिर्फ अपनी बात क्यो सोचता है रे मागन ?"

तब तो भरोसा था कि उसका अपना जीवन, उसके अपने लोग कहीं उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पर जेल से बाहर आकर देखा कहीं कुछ भी नही है। जैसे किसी चित्रकार ने बड़शूली मौजा मे से माझीपाड़ा का हिस्सा पोछकर उसकी जगह कोई और चित्र बना दिया है।

अब तो थाना-पुलिस-खाकी वर्दी के बीच ही जीवन काटना है। वह लाइफर है। अभी भी वह जेल में है। अभी पाँवों की बेड़ी नहीं कटी है। यदि और कही जा पाता जहाँ उसे वर्दी और पुलिस यह न याद दिलाते रहते कि वह लाइफर है, तो वह रामगिरि पहाड़ तक दौड़ जाता और पता लगाता कि क्या वहीं से मादल की डिम्-डिम आवाज आ रही है। कहीं मारहुल पर्व पर सयान लड़कियाँ बालों में शाल के फूल पहने नाच रही हैं।

कैदी है, कैदी है मागन अभी भी। इसीलिए तो छोटे-छोटे डग भरता हुआ चलता है। थाना से बांध तक और बांध से थाना तक। पूरे रास्ते में उसके घिसटते हुए पाँवों के दाग है।

थानेदार के घर वह किसी से बात नही करता, सिपाहियों से भी नही। काम हो जाने पर सरकारी वन में चला जाता है। सरकार ने वहाँ यूकिलिप्टस के पेड़ लगा रखे है। चारों ओर पेड़ ही पेड़ हैं। कही कोई आदमी नही। मागन की समझ मे नही आता कि वन मे घुसते ही वह क्यों लबे-लबे स्वाभाविक डग भरने लगता है ?

इसी तरह जब वह वन में लबे डग भरता विचर रहा होता है तो उसकी मुलाकात कभी-कभी फारेस्ट आफिसर से होती है, जिसे लोग 'बीट बाबू' कहते हैं। बीट बाबू थाने जाते है कभी-कभी। "मैं आपके पास आऊँगा। आप मेरे पास आइयेगा, नही तो इस उजाड़ मानवहीन स्थान पर कोई जिंदा रह सकता है ?" बीट बाबू मागन को पहचानते हैं। मिल जाता है तो उनकी बातचीत होती है। बीट बाबू ही बात शुरू करते है।

"अरे मागन।"

"हाँ, बाबू।"

"कहाँ घूम रहा है ? कोई गार्ड देखा ?"

"नहीं बाबू।"

"सब बेटा, फाँकी मारते है।"

"पता नही, बाबू।"

"देखना, कोई पेड़ न काटे। देखते ही बाँधकर मेरे दफ्तर ले आना, समझे ? रुपये मिलेंगे, इनाम।"

"अच्छा, बाबू।"

मागन को इस बात पर एकदम विश्वास नही होता कि वह किसी को पकड़कर वन विभाग के दफ्तर में ले जाय तो उसे रुपये मिलेंगे।

सिपाही भी कहते हैं—"मागन तू बड़ा बुद्धू है। जगल में घूमता है तो किसी को पेड काटते नही देखता ?"

"कौन काटेगा पेड़, बाबू ?"

"तेरे ही जात-भाई।"

"वे कहाँ रहते हैं ?"

"रामगिरी के उस पार से आते हैं।"

"फरेस* में।"

"हाँ रे बुद्धू ! पकड में आयें तो यहाँ ले आना। जुर्माना करेंगे। हम भी लेंगे, बीट बाबू को भी देंगे। और यहाँ है क्या ? खाली तनख्वाह से कहीं गुजारा होता है ?"

मागन उनकी बात को अच्छी तरह हृदयंगम करने की चेष्टा करता है। फिर थानेदार साहब से पूछता है—"बाबू !"

"क्या है रे मागन ?"

"संथाल लोग फरेस में ढुकते हैं ?"

"तूने देखा है ?"

"सिपाही लोग बोल रहे थे।"

"हाँ, घुसते तो हैं। तू तो फरेस में घूमता है। देखना तो बताना या पकड़ के ले आना। कर सकेगा ?"

"पकड़ ले आऊँगा।"

"पकड़ लाना।"

"वन में संथाल ढुकते हैं ?"

"और नहीं तो क्या !"

"कहाँ से आते हैं ?"

"दूर से। उन्हें भी कोई क्या दोष दे। पकड़ लीजिए तो कहते हैं—'रुपये देकर पेड़ कटवाते हैं लोग। पेट की आग तो बुझानी है न, बाबू। पाँच रुपया हाथ में रख दो, तो पेड़ कहो पेड़, आदमी कहो आदमी, पहाड़ कहो पहाड, जो कहोगे वही काट गिरायेंगे।"

"बाबू, मैं तो उन्हें नहीं देखता ?"

"पर वे तुझे जरूर देखते होंगे।"

मागन बहुत विपन्न महसूस करता है। इतने दिनों से अपनी जात-बिरादरी के लोगों से कोई सपर्क नहीं। इससे क्या वह एकदम बदल गया

*अंग्रेजी के 'फारेस्ट' शब्द का अपभ्रंश।

है? एक संथाल को देखने के लिए उसकी आँखें तरस गयी और वे इसी फरेस में आते हैं।

"मैं उन्हें खोजकर रहूँगा।"

"अगर देखना ज्यादा लोग हैं तो चुपचाप आकर बता देना। फरेस की रखवाली नही हो पा रही है। सरकार की भी बुद्धि की बलिहारी। ऐसी जगह पर फरेस लगाती है।"

मागन यंत्रवत् बोलता है—"हाँ बाबू?"

पर वह थोड़ा सजग होता तो उसकी समझ में आ जाता कि फरेस तो ऐसी ही जगहों पर लगाये जा सकते हैं। क्या किसी नगर में दस-बीस हजार पेड़ों के फरेस लगाये जा सकते हैं?

उस दिन खूब जल्दी-जल्दी थाने का काम पूरा करके मागन फरेस की ओर निकल जाता है।

थानेदारनी ने एक दिन थानेदार से पूछा—"कैसा साँड़ जैसा आदमी। एकदम चुपचाप घूम-फिर कर काम करता रहता है। कैसा अजीब लगता है। अब क्या उसे तुमने जंगल मे कुछ काम दिया है?"

"औरत की जात की बुद्धि होती है भोथी। मैं क्या देश का राजा लगा हूँ कि जहाँ चाहूँ उसे काम पर लगा दूँ। तुम्हारा काम-काज तो पूरा करके ही जाता है। जाने दो।"

"हाँ, काम तो पूरा करके ही जाता है।"

"और पानी थोडी किफायत से खरच करो। समझी? यह कोई बात नही है कि एक आदमी पानी निकालता जा रहा है और तुम ढालती जा रही हो।"

"लाइफर है इसीलिए इतनी मशक्कत कर पा रहा है।"

"वह तो है।"

थानेदार और थानेदारनी यह बात भूल ही गये थे कि अब मागन-लाइफर नही रहा। दर-असल वह मुक्त और स्वाधीन है। पर यह बात उन्हें याद नही रहती। उन्हें क्या, यह बात मागन को भी याद नही रहती।

संथाल जीवन वैसे ही दुनिया-जगत से कटा हुआ था, पूरी तरह द्वीपांतरित और चिरकाल से निर्वासित। इसीलिए मागन सोचता था

लाइफर बने रहना ही शायद मारांबुरु देवता की इच्छा है।

पर वे आते हैं, वन मे प्रवेश करते हैं, उसे देखते हैं, फिर भी छुपे रहते है, इस बात से उसकी लाइफर सत्ता की भीत जैसे दरक गयी। कहीं पर जैसे बारतिया करम पूजा के शस्यबीज उगने लगे, कुछ कोमल उँगलियाँ शहरा पूजा में अरवा चावल के चूरे पर पाँच शाल-पत्तो मे पीठा सजाने और प्रदीप जलाने लगी। कही पर सूखी और जली धरती पर बरसात की बूँदें झरने लगी। कोदो के पौदे अँखुआने लगे।

मागन बहुत विचलित हो उठा। वन में प्रविष्ट होते ही अनायास वह कोई और मागन हो उठा। यह नया मागन पाँव नहीं घसीट रहा था, बल्कि हवा की तरह सर्वत्रगामी, खरगोश की तरह सतर्क और अंधकार की तरह निःशब्द था।

पेड़ पर पेड़, पेडो की कतारें। यूकिलिप्टस के पेड़ जहाँ खत्म होते थे, वहाँ से शुरू होता था शाल वन। बहुत विशाल नहीं, तरुण पतले शाल वृक्ष। झाडियो का वन। कौन पेड़ काटता है, कौन झाड़ियाँ काटकर इकट्ठा करता है, कौन छाया की तरह चुपचाप उसका पीछा कर रहा है?

"कौन है रे संथाल? जवाब दे भाई! मैं किसी को पकड़ाऊँगा नही। कितने दिन हुए अपनी जात-बिरादरी के किसी आदमी का मुँह देखे, अपनी बोली सुने। बहुत परेशान हो गया हूँ। दया करो भाई! दया करो!"

पता नहीं कौन हवा की तरह झाडियों के बीच से फिसल जाते हैं, खरगोश की तरह तेज पाँवों दौड़ जाते हैं, पेड के पत्तों की सरसराहट मे न जाने कौन फुसफुसाकर बातें करते हैं! खोज-खोजकर व्यर्थ और विकल होकर मागन लौट आता है। नही, उसके पाँवो से बेडी नहीं उतरती, नहीं उतरती।

पाँव घसीट-घसीटकर लाइफर बहगी पर पानी ढोता है। उसकी आँखें खुली रहती हैं। पर आँख की पुतलियों को गौर से देखने पर लगता है, वह स्वप्न देख रहा है। वह जैसे किसी जादू की लकड़ी के स्पर्श से बंदी हो गया है। काका ने किसका ब्याह कराने को कहा था? किसके बच्चे को गोद मे लेकर उनकी छाती जुड़ायेगी? वह लाइफर नहीं है, लाइफर नहीं है। वह लाइफर मागन कैसे हो सकता है? अगर वह यह नहीं पता कर

पाता कि फरेस में कौन ढुकते हैं और निकल जाते हैं ! क्या उन्होंने उसे कुजात कर रखा है ! पर वह तो जेल वास का प्रायश्चित्त करने को राजी है।

"लाइफर ! चहबच्चे को भर दे ? आज मेहमान आयेंगे।"

बांध से पानी लाते हुए रास्ते में जो चिपटा-सा काला पत्थर पड़ता है, वह जैसे काकी की कटी-फटी हथेलियों की छुअन-सा लगता है मागन को।

नीम के तेल की महक। नीम का बीज पीसकर निकाले गये, कड़वी और तीखी गमक वाले तेल की परिचित गंध। मागन पत्थर पर माथा टिकाता है, मुँह घिसता है उस पर। कोई संथाल स्त्री या पुरुष बांध के पानी मे नहाकर गया है। रूखी देह नहाकर, फिर पत्थर पर बैठकर सिर पर और शरीर पर नीम का तेल लगाया है उसने, मागन उस गंध को छाती में भर लेता है। 'काकी हो ! दानी रे !' मागन फफक कर रोता है। मागन का खोया हुआ अतीत, उसका अपहृत जीवन, सब नीम के बीज को पीसकर निकाले गये तेल के कड़वे और तीखे परिचित गंध मे जैसे लौट आते हैं।

वहंगी पर ढोकर पानी लाता है मागन। उसका चेहरा तमतमाया हुआ है। धान कट गया है। अगहन के अंतिम और पूस के प्रथम दिनों की पहाड़ी हवा में ठंडक के दांत उग आये हैं। सिपाही लोग पत्तों और करकट में आग लगाकर तापते हैं। मांस पकने की सुगंध आ रही है। आज थाने पर बहुत से अतिथि आये हैं—"बीट बाबू, उनकी पत्नी और बच्चे।"

बीट बाबू पुकारते हैं—"क्यों रे मागन ! किसी को पकड़ पाया ?"

"नहीं बाबू ! पकड़ता, तो छोड़ता भला।"

"पकड़ेगा भी कैसे ? वे तो रात के आखिरी पहर में आते हैं और भोर होते-होते उड़नछू हो जाते हैं। शाम को सब इकट्ठा करके रख जाते हैं। कौन करा रहा है, क्या हो रहा है, सब समझता हूँ। पर दो ठों गार्ड लेकर उनका सामना करूँ भी तो कैसे ? तेज-तंदुरुस्त लोग, टांगी, कुदाल क्या चलाकर मारें।"

"तो फिर उसी समय जाऊँगा, बाबू ?"

"पागल है ! क्या वन में रात बितायेगा ?"

"रात बिताने पर उनकी देख पाऊँगा ?"

थानेदार और बीटू बाबू हँसते हैं। थानेदार कहते हैं—"जा, खा ले। बहुत हो चुका काम।"

"अच्छा, जाता हूँ।"

"लाइफर है। खूब मेहनती। समझे बीटू बाबू; बाकी लोग जहाँ से पानी लाते हैं, वहाँ से नहीं लाता। बहुत दूर से लाता है। क्यों रे ?"

"हाँ बाबू।"

"देखना भाई, जंगल मे जाना तो हाथ में लाठी जरूर हो। उन लोगों का कुछ भरोसा नहीं है।"

"हाँ, बाबू।"

पाँव घसीटते हुए मागन चला जाता है। रेणुबाला उसकी लोहे की थाली सामने रख देती है। एक ढेर भात जिसके ऊपर दाल डाल दी गयी थी। बगल में थोड़ा-सा मांस। आजकल हल्की-हल्की ठंडक में गरम भात के साथ सुअर का मांस खाने के दिन हैं। जाड़े का चाँद कैसा मुख मलीन किये हुए है। मागन अपनी थाली लेकर अपने कमरे के बाहर आ बैठता है। सोचता है—बीट बाबू ठीक कहते हैं। या तो शाम को या फिर रात के आखिरी पहर में वे आते हैं।

"क्यो रे लाइफर ! तुझे गोश्त मिला कि नहीं ? एक सिपाही सदय कंठ से पूछता है।"

"मिला है।"

"अच्छा ! अच्छा ! खा ले।"

"बाबू, एक बात बताइये। जो लोग जंगल में घुसते है, उन्हें पकड़कर थाने ले आया जा सकता है ?"

"जरूर।"

"फिर क्या उन्हें जेल भेजते है ?"

"हाँ, जेल भी भेज सकते हैं, पर अक्सर उनके गड़ासे और टंगारियाँ छीन लेते हैं और जुर्माना करके छोड़ देते हैं।"

"वे तो गरीब लोग हैं।"

"हाँ, अपने सामान बेच-बूचकर जुर्माना देते हैं। पर सरकार भी कितनी मेहनत, कितनी कोशिश से जंगल लगाती है, लकड़ी बेचकर ढेर सारे पैसे पाती है। तो फिर चोरी करने देगी ?"

' नहीं। कैसे करने देगी ?"

"मागन मन-ही-मन सोचता है।"

छुट्टी नामजूर होने से वह सिपाही अफसरों से नाराज है, बोलता है—"अरे ! मैं बीट बाबू को भी जानता हूँ और अपने थानेदार साहब को भी। जंगल का ये लोग क्या कर रहे है, वह भी जानता हूँ। मगर मागन, पालधी बाबू जंगल के जितने पेड़ कटवाकर बाहर भेजवा रहे है, उसके बदले में जो पैसा आ रहा है, उसकी हवा न हम लोगों को लग पाती है और न फारेस्ट गार्डों को। कभी-कभी दो-चार डोम या संथाल हाथ लग जाते है तो दस-पाँच रुपये हमारी जेब में भी आते हैं। इस थाने मे और कुछ नही है। बहुत बुरी जगह है।"

"होगा।"

"तू ही अच्छा है। पानी लाना, बाग में थोड़ा खुरपी, कुदाल चला लेना, खाना और सोना।"

"हाँ, भाई।"

"सिपाही चला जाता है। खाना खाकर मागन थाली और गिलास माँगकर रखता है, फिर दरवाजे के चौखट पर चुपचाप बैठ जाता है, सोचता है—ऐसी रात में भी क्या वे फरेम में आते है ? रामगिरी पहाड़ के उस पार क्या है ? संथाल बस्ती ? बड़दूली के लोग क्या वहाँ जाकर रह रहे है ? जेल में रहने से क्या आदमी अपवित्र हो जाता है ? क्या शुद्ध होकर समाज मे शामिल होने के लिए समाज को खिलाना होगा ? ठीक है, समाज जो कहेगा वही करूँगा।"

एक पहर रात रहते ही मागन बिस्तर छोड देता है। पानी ढोने की बहँगी हाथ मे उठा लेता है। पक्के बाँस की पोख्ता बहँगी है। इसी से वह लाठी का काम चलायेगा। किसी को मारना तो है नही उसे, सिर्फ गीदड़ और भेड़िये को हाँकने के काम आयेगा ! बटवाड़ी भी अब जैसे बदल गया है। नहीं तो, ऐसी ठंडक में बाँध के किनारे उगे घने-काले उलू घास के

वन को छोड़कर जल के पखेरू इतनी दूर घोंसला बनाने आते ? बड़मूली के जीवन-काल में जाल लगाकर मागन झिनाई नदी के किनारे चिड़िया पकड़ता था। काकी चिड़िया का मांस पकाती थी। युकिलिप्टस के वन बड़े निठुर होते है। उनकी डालों पर चिड़िया घोंसला नही बनाती।

थाना पीछे छूट जाने पर मागन बड़े-बड़े डग भरता है। लाठी पर बल देकर फाँदने में कितना आनन्द है ! अब पाँव में बेड़ी नहीं पड़ने दूंगा। थाना-पुलिस को देखते ही पाँव जैसे बँध जाते हैं, घिसट-घिसटकर चलना पड़ता है। तुम लोग कहाँ हो ? किसके लिए लकड़ी चुराते हो ? जिनके लिए चुराते हो वही तो तुम्हें नहीं पकड़ा देते हैं ? मागन तुम लोगों का दुश्मन नही है भाई ! मागन को तुम अपने पास बुला लो। नीम के तेल की गंध ने मागन को पागल कर दिया। जाड़े की ठंड में भी शरीर पर मिट्टी मलकर कौन नहाते हैं ? कौन लोग नहाने के बाद शरीर पोंछकर नीम का कड़वा तेल उस पर मलते हैं ? मीठी-मीठी गंध। ग़रीब संथाल के शरीर की गंध।

मागन जंगल में घुसता है। नहीं, दीर्घ और उन्नत युकिलिप्टस का उद्धत वन नही है ये। वे शाल वन में फिरते हैं, वे झाड़ियों के वन में घूमते हैं। कही पर हल्के पाँवो की आहट होती है, जैसे कुछ लोग दबे पाँव दौड़कर दूर जा रहे हों। टूटे हुए तारे की तरह, आँधी में तैरते हुए पत्ते की तरह उनके पीछे छूटता है मागन। छायाएँ हिलती हैं, दूर खिसक जाती हैं। मागन शाल की एक पत्तों-भरी डाल तोड़ लेता है। मुझे मारो मत, मैं शाल पत्र की डाल हाथ में लिये आ रहा हूँ।

"रुक जा !"

भारी, दबे गले की गरजन मागन के कानों में पड़ती है और साथ ही पत्थर का एक टुकड़ा सर्राता हुआ उसके बगल से निकल जाता है।

"नही, मारो नहीं ! मैं मागन संथाल हूँ भाई, कितने सालों से पाँव में बेड़ी पड़ी हुई है। ठीक से चल नही पा रहा हूँ।"

तभी मागन के पाँव पर एक लाठी पड़ती है। मागन गिर पड़ता है। चोट ज्यादा नही लगी है। वह उठ खड़ा होता है। काले-काले चेहरे उसे चारो ओर से घेर लेते हैं।

"थाने का कुत्ता है तू ?"

"संथाल होकर भी संथाल को पकड़ने आया है ?"

"काटकर रख दूँगा।"

"मेरे हाथ मे शालपत्र की डाल है, भाई।"

"शालपत्र डाल ?"

"ये देखो।"

"तो ?"

"सभी नीचे झुककर कौतूहल से देखते है।" ओह! नीम के तेल की गंध! नीम के तेल की गंध!"

रात बीतना चाहती है। दिन उगना चाहता है। नदी की कलकल की तरह मागन की आत्मकथा चल रही है और शिशिर के बादलों की तरह उसकी आँखें झर रही हैं। काले चेहरे भावहीन और और निस्तब्ध हैं। मागन सब की ओर देखता है और क्रमशः वे सब प्रौढ़, पहाड़ हांसदा की तरफ देखते हैं।

पहाड़ हांसदा टंगारी के ऊपर बल देकर खड़ा होता है। देर तक पता नही क्या सोचता रहता है। सोचता रहता है।

"क्या कहते हो पहाड़ हांसदा ? भोर हुआ चाहता है।"

पहाड सिर हिलाता है। फिर मुँह मे भर आये थूक को पिच् से थूकता है और कहता है—"उठो मागन, उठो।"

पहाड़ अपने साथियों के की ओर देखता है, बोलता है—"यह हमारा बिरादर है—संथाल भाई। हम गरीब हैं, गरीब रहेंगे, पर मागन का त्याग करना धरम नही है। चारों ओर शाल वन है। पूरब के आकाश में देवता हैं। चलो मागन, संथाल जाति के दुख से जर्जर, अनिश्चित जीवन में लौट चलें।"

मागन उठ खड़ा होता है। "उसके भी सिर पर लकड़ी का एक बोझा रख दो। दूर जाना है, तेजी से चलना होगा। रामगिरी की उठान पार करके नीचे उतरना होगा।"

मागन बहँगी को फेंक देता है। बेड़ी उसके पाँव से सरक जाती है। अब वह लंबे-लबे डग भरते हुए चल रहा है। नदी की कलकल ध्वनि को

तरह बतिया रहा है। "सुनो, सुनो स्वजाति के सज्जनो, धड़शूली के मांझी पाड़ा के संथालों की कुछ खबर है तुम्हें ? नहीं, नहीं वैसे ही पूछता हूँ। मिल जायेंगे तो ठीक, नहीं भी मिलेंगे तो कोई बात नहीं।"

मागन अब उस पेड़ की तरह है, जो उखड़कर बाद के पानी में तैरते तैरते बहुत दूर जाकर फिर जमीन पा गया है। कोई बात नहीं, नयी जमीन में ही वह अपनी जड़ें फैला लेगा। जमीन से रस पाकर मागन की जड़ें मजबूत होने लगती हैं और वह हरा-भरा हो उठता है।

सामने रामगिरि पहाड़ की ढाल दीख रही है।

अरे, कितनी जल्दी मागन पहाड़ की चढ़ाई चढ़ गया !

तेपांतरी

"ग्राम का नाम मानभंजन। नदी का नाम गिरि। है न कमाल के नाम! गिरि की जब जवानी थी तो वह कूदती-फांदती रूप नारायण की गोद में जा गिरती थी। नदी के भी अच्छे और बुरे दिन, जवानी और बुढ़ापा होता है। गिरि के बुरे दिन भी आये जब रूप नारायण दूर सरक गयी। गिरि भी मनोव्यथा से सूख गयी।

इन बातों की शुरूआत कहां से होती है, इसको जानने वाला कोई भी प्रवीण पुरुष नहीं है मानभंजन में आज। गिरि बालू के पाट में परिणत होकर सूत की तरह पतली हो गयी है। पर सरकार ने जो बांध बना रखा है गिरि पर, उसमें पानी रहता है।

गाँव का नाम मानभजन क्यों पड़ा-इस कहानी को भी लोग भूल जाते, अगर सभी की सुविधा के लिए मति सांतरा ने इस कहानी की ग्राम के स्थानीय कवि शिवकाली पाल द्वारा लिखवा कर और कांथी से छपवाकर प्रस्तुत न किया होता। 'मूल्य एक रुपया नगद। उधार मांग कर लज्जित न करें', यह वाक्य पुस्तिका के ऊपर ही मुद्रित था। गुलाबी कवर वाली यह पुस्तिका एक नजर में वर्णमाला की किताब-सी लगती थी।

मति सांतरा की दुकान 'महाकाली परचून आलय" में मसाले-अनाज-पेंसिल-लाजेंस-बिस्कुट-निरोध आदि के साथ एक कोने में 'सचित्र मानभंजन नाम रहस्य' की प्रतियां भी बिक्री के लिए पड़ी हुई थीं। सचित्र का

मतलब यह कि पुस्तिका के कवर पर मति सातरा के बचपन की एक तस्वीर छपी थी, जो एन० सी० सी० की यूनिफ़ार्म पहनकर खिंचवाई गई थी। पुस्तिका पढने पर नाम के रहस्य का पता लगता था। गाँव में जमींदार के छोटे पट्टीदार के वंश का एक मंदिर है। मंदिर मे स्थापित देवता नारी-विरोधी नही हैं, पर मंदिर मे वे अकेले रहते हैं। वह जमींदारी का स्वर्णयुग था, प्रजा मंदिर में तरह-तरह के बेगार करती थी। कोई झाड़ू लगाता था, कोई गोबर लाता था, कोई फल लाता था, कोई फूल।

उसी मंदिर में राधा नाम की एक विधवा युवती, जो जाति से कुम्हारिन थी, पूजा करने आती थी। रूप कोई खास न था, पर जवानी में हर लड़की पर जो लावण्य स्वाभाविक रूप से आता है वह उसमें भी था। पर कृष्ण कन्हैया का मन भी बड़ा अजीब है। वह उस साधारण-सी मानवी पर ही आ गया। शायद उसका नाम राधा था इसीलिए मुरलीधर ने उसे अपनी राधा बनाने का इरादा किया। देवता का यह आदेश पुरोहित के मुख से भक्तों के पास पहुँचा। तेरह वर्ष की देह से बडी और बुद्धि से छोटी राधा खुशी-खुशी लीलाधर की संगिनी बनने को राजी हो गयी। उसे घेर कर भक्तों ने खूब ढोल-ताशे बजाये।

दिन की इस पूजा-अर्चा और भक्ति-भाव के साथ कृष्ण को अर्पित की गई राधा के सामने आधी रात को वंशीधर नही प्रगट हुए, प्रगट हुआ पुरोहित। उस रात के बाद राधा वहाँ नही दिखी, उसके प्राण देवता की मूर्ति में विलीन हो गये और उसका शरीर गिरि के जल मे तैरता रहा। पुरोहित को मारकर नदी में फेंक देने की सदिच्छा प्रगट करने के बाद से कूली का कुछ पता नही चला। कुम्हारों को मंदिर की ओर से नित्य भोजन-सामग्री मिलने लगी। उन्होंने ही पीले रंग की राधा की एक मूर्ति गढ़कर मंदिर मे स्थापित कर दी।

मान-भंजन नाम के पीछे यही कहानी प्रचलित है, हालांकि बडे घराने के जमींदार दावा करते हैं कि उनके आदि पुरुष मान-भंजन चौधरी के नाम पर ही इस गाँव का नाम पड़ा है।

इन बातों से अब कुछ आता-जाता नही है। जमींदारों की दोनों

पट्टियाँ गाँव में अब नही आती। दोनों पट्टीदारों की आपसी मारपीट के फलस्वरूप मारे जाने वाले लोगों की लाशें गिरि नदी ढोकर ले गयी थी। अब वे बातें कहानी बन गयी हैं। तब जो चारागाह थे, अब धान के खेत बन गये है। जमीदार लोग चले गये हैं। उनके नौकरों में से कुछ हैं, कुछ नही हैं। इलाके में नये-नये लोग आकर भर गये हैं।

कृष्ण कन्हैया इस बीच मंदिर में खड़े-खड़े बड़ी मुश्किल मे पड़ गये हैं। मान-भंजन अब गरीबों का गाँव हो गया है। लोगों को पट्टे पर पाँच डिसमिल ज़मीन मिली है और उन्होने गाँव मे अपने झोंपडे खड़े कर लिये हैं।

बहुत दिनों पहले अपने गाँव छोड़कर जो पट्टुए यहाँ आये थे उन्ही को अभी तक कुछ नही मिला है। मति सांतरा आजकल इस अंचल का अघोषित नेता है। मति का जीवन दर्शन बहुत साफ-सुथरा है। "जो गद्दी पर होगा मैं उसका सेवक रहूँगा। जब तक जयंत बाबू गद्दी पर थे, मैं उनका आदमी था। वे ज़मीदार घराने के थे, इसलिए आदमी की तकलीफ़ नहीं समझते थे। उनके समय में मैं तुम लोगों के लिए कुछ नही कर पाया। वे सोचते थे मैं खूब मछली मार रहा हूँ। यह सही है कि उनके सभी कामो मे मैं हाथ बँटाता था। करता भी क्या? वे गद्दीनशीन थे।"

अब अजामिल बाबू का दल गद्दी पर बैठा है। वैसे अजामिल बाबू भी जयंत बाबू की जाति के ही है। और यह बात भी सच है कि उन्होंने बहुत-सी जमीन दबा रखी है, जो भी हो। ये गरीबों के आदमी है। इन्ही के अमल मे जयंत बाबू की ज़मीन दखल हो गयी, निश्चय ही उनकी जेब में भी मोटी रकम गयी होगी। पर सरकार ने अगर कानून बनाया हो कि वह हर्जाना देगी तो हम-तुम क्या कर सकते है?

जयंत बाबू का क्या गया, अजामिल बाबू का क्या रहा, इन सब बातों से तुम्हें क्या लेना-देना है? ठाकुर रामकृष्ण की पालागन बार-बार सुनने का क्या फायदा? हरसाल तो आता हूँ। ठाकुर का कहना है बाग में कितने पेड़ हैं, उसे गिनने की तुझे क्या जरूरत है? जितने आम तुझे खाने हैं, तू खा ले। पेड़ ज्यादा हैं, तो खाने वालों की भी कमी नही है।

मति सातरा ने कहा था-'बाबू, मैं समझा देता हूँ। आप इन्हे नही

समझा पायेंगे।"

"देखो।"

"सुनो हे ननी"

"बोलो।"

"बाबू की दया से सड़क बन रही है न ?"

"हां बन रही है।"

"और सुनो, देवी माँ का पेड़ जैसे का तैसा उठाकर नयी जगह पर लगा दूँगा, समझे ? इंद्रपुरी बना दूँगा।"

"इतना पक्का और पुराना पेड़ क्या उखाड़कर दूसरी जगह लगाया जा सकता है ?"

"अगर चाह हो तो क्या नहीं किया जा सकता है।"

बाबू ने खीझियाकर कहा था—"तुम भी अच्छा बाजा बजा रहे हो। इतना भीमकाय पेड़ उखाड़ने पर कितना बड़ा गड्ढा बनेगा इसका भी पता है ?"

"हाँ, यह तो है।"

मति सौंतरा अपना पक्का दिमाग लगाता है इस मुश्किल को हल करने के लिए। सेमल का वह विशालकाय पेड़ कितने हजार में बिका, इसका पता किसी को न लगा। बाबू को कितना मिला और दलाली मे मति सौंतरा को कितना, यह भी अज्ञात रह गया। उन्होंने नजदीक से ही एक नया पौधा यत्नपूर्वक उखाड़कर उस जगह लगा [illegible] घर का नया स्थान बन गया।

"क्या वहाँ नहीं रहेंगी ?"

"बाबू लोग सिर्फ चाल चलते हैं।"

"क्या चाल चले ?"

"मानस का मेला, आठ दिन का उत्सव सब वहाँ होगा और बाबू लोग इसका फ़ायदा उठायेंगे।"

कुशल ने कहा था—"बापू अगर माँ की यही इच्छा है, तो होने दो।"

ननी की बात सच निकली। मगर साँप और सँपेरे मेले मे नही आये। जो पहले आते थे वे अब मयूर भज की ओर किसी और मेले में चले गये। वहाँ पर हजारों रुपयों की खरीद-फ़रोख्त हुई।

कुछ दिनों बाद ननी मर गया। मरने के पहले वह अपने बेटे से कह गया। "मेरा तो जाना न हो सका, तुमसे हो सके तो उस मेले में जरूर जाना। यह मेला तो बाबू लोगों का व्यवसाय हो गया है।"

"अच्छा।"

"और फिर बाबू लोगो को भी क्या कहें ? साँप को लोग पकड़ते हैं और मार डालते हैं। उसका चमड़ा बेच देते हैं और मांस खा लेते हैं। अब साँप रह ही कहाँ गये हैं ? पहले साँप से आदमी डरता था, अब···"

"आदमी से साँप डरता है।"

"वाह रे, आदमी की भूख !"

"सियार, साँप, सब साफ़ !"

लंबे बुखार में ननी की मौत हुई थी। पेशाब करते समय कभी-कभी खून भी निकलता था। हाथ-पाँव भी फूल गये थे। पोखरे की कीचड़ पेट के निचले हिस्से पर लगाकर और करेले के पत्ते का पानी पीकर पेशाब की धड़क मिटाने की कोशिश चल रही थी। पर बेटा जानता था कि बाप नहीं बचेगा। यह बात बाप भी जानता था। दोनों ही इसे अपने मन में छुपाये हुए थे।

"कुशल, तू कुछ बनाकर खा ले।"

"तुम भी थोड़ा-सा खाओगे ?"

"खा तो पाऊँगा नहीं। फिर भी···"

"मंपी का पानी दूँ ?"

"अच्छा तो लगता नहो, अब कहता है तो···"

कुशल सब बात समझता है। अच्छी-से-अच्छी चीज लाकर देने पर भी बाप को नही रुचता। वह कुछ खा नही पाता।

दो कौर खाकर ही ननी कहता है—"बहुत खा लिया।"

"कहाँ खाया? जरा-सा तो दिया था।"

"बहुत खा लिया इस जीवन मे तरह-तरह के साग, भात, मछलियाँ···"

"आजकल कुछ मिलता ही नही।"

"उन दिनो इतने आदमी नहो थे। साग-सब्जी बाहर भी नही जाती थी।"

"अब तो बाबू लोगो का मजा है। दिन-रात ट्रक में ढुलायी चल रही है।"

"कुशल, तू मयूरगंज जरूर जाना।"

"अच्छा।"

"वहाँ हम लोगों का मेला होता है।"

"जाऊँगा बापू।"

ननी हाँफते हुए कहता है—"अभी भी वह जंगली जगह है। यहाँ की तरह सिनेमा, नौटकी और शराब का ठेका नही लगता। वहाँ पर मनसा मेला मे बूनो, संथाल कितनी ही जाति के लोग आते हैं। वहाँ सभी तुम लोगों का गाना सुनेंगे और जानता है नदिया से कठपुतली वाले नाच दिखाने जाते है। मुंडा जाति के लोग मुखौटे पहनकर नाचते हैं।"

"जाऊँगा बापू, जरूर जाऊँगा।"

इसके दो-चार दिन बाद ही ननी मर गया।

मनसा तला के व्यापार पर मति साँतरा ने कब्जा कर लिया है। इसी प्रकार सभी जगह उसके अदृश्य हाथ पहुँचे रहते है। नाम कही भी नही, पर काम मे हर जगह। लोग तरह-तरह की बातें कहते है। मति मुस्कराकर अपनी पत्नी से कहता है—"कहते हैं तो कहने दो।"

"जलते हैं सब।"

"जिसने आदमी को यह जीवन दिया है। उसी ने उसके मन में ईर्ष्या

भाव भी पैदा किया है। पब्लिक की भलाई करने चलो, तो जितने मुँह उतनी बातें होती ही हैं। जमींदारी के जमाने में कोई मुँह खोलता था? अब जनता की सरकार है तो जनता बोलेगी ही।"

जीवन में सुख ही सुख नहीं होते।

मति की पत्नी रोगिणी है। वह इतनी दुबली हो चुकी है कि चेहरे पर सिर्फ दांत दिखलाई पड़ती है।

जीवन में दुख ही दुख नहीं होते।

मति के जीवन का एक बहुत बड़ा सुख है तेपांतरी।

तेपांतरी का नाम इतना काव्यमय क्यों है इसकी कोई व्याख्या नहीं मिलती। तेपांतरी के दादा जमींदार के प्यादा थे। उनका नाम था नाटा सरदार। पाँच बीघा जमीन का वह उपभोग करते थे। नाटा सरदार और तेपांतरी के पिता दोनों ही समयानुसार परम पिता परमेश्वर के वहाँ चले गये। मति सांतरा के कागज पर बायें हाथ के अँगूठे की छाप देकर तेपांतरी की माँ ने पति का श्राद्ध किया।

चूड़ा, दही, बताशा और आखीर में बूँदी। "भले ही वह आदमी जमींदार के प्यादे का बेटा था, पर उसका श्राद्ध तो अच्छी तरह होना ही चाहिए। लड़के नहीं है, बस एक पेट पोछनी बेटी है। उसी को आगे करके तुम खुद सब काम करो।"

मति सांतरा के नाम पर चारों ओर धन्य-धन्य होने लगा। जमींदार के घर का तिरपाल, दरी, यज्ञ के बर्तन ये सारी चीजें पता नहीं कैसे मति सांतरा के घर पहुँच गये। उन चीजों से वह एक छोटा-मोटा व्यवसाय चलाता है। एक रात के लिए दरी का किराया बीस रुपये और तिरपाल के एक सौ रुपये हैं। तिरपाल लगाकर और घर से कलकत्ता तक की यात्रा करके मति सांतरा ने नाटा सरदार की पारलौकिक यात्रा को सम्पन्न कराया।

श्राद्ध से निपटकर नाटा सरदार की पत्नी जिस समय इधर-उधर से पैसों का जोगाड़ कर रही थी, उसी समय एक दिन मति सांतरा ने उसकी जमीन को जोतवाना शुरू किया।

"मति बाबू यह क्या कर रहे हैं?"

"क्या कर रहा हूँ ?"

"जमीन क्यों जोतवा रहे है ?"

"तो क्या हुआ ? जमीन हमारी है जो चाहूँ सो करूँ।"

"जमीन तुम्हारी है !"

"वाह ! मुट्ठी-भर रुपये लेकर तीन मास के करार पर तुमने जमीन बंधक रखा था। पांच महीने तो हो गये। अब इस जमीन पर तुम्हारा क्या अधिकार है ?"

तेपांतरी की मां ने गांव के पांच पंचों के पास खूब दौड़-भाग की। जमींदार के पट्टीदार दनुज बाबू के पास भी गयी थी। दनुज बाबू तुरत-तुरत काकद्वीप षड्यंत्र के केस से फारिग होकर आये थे। उन्होंने भी इस मामले में दखल देने की कोशिश की थी। एक पंचायत भी बैठी थी।

"बाबू, तुमने एक सौ रुपये देकर एक सादे कागज पर अँगूठा लगवा लिया था। कहा था 'विपत्ति में पड़ गयी हो। तुमसे सूद नहीं लूँगा।'"

"मति, इसका क्या जवाब है तुम्हारे पास ?"

"दादा, उसे जो कहना है, कहने दीजिए।"

"आगे बोलो।"

"और मुझे क्या बोलना है ? पुरखों के जमाने से पांच बीघे जमीन हमारे पास है। मैं उसका उपभोग कर रही हूँ।"

"वह तो जानता हूँ। मति, बोलो, क्या कहते हो ?"

"दादा नाटा के श्राद्ध में मैंने किस तरह क्या-क्या किया यह सभी जानते है। छोड़िए, बात बढ़ाने से बढ़ती है। सादा कागज की बात कर रही है यह औरत। यह देखिये स्टाम्प पेपर पर क्या लिखा हुआ है ?"

"ऐसा कागज नहीं था।"

"अब कहां से आया ?"

दनुज के चेहरे पर दुख की व्यथा फैल गयी, उन्होंने कहा—"सादे कागज पर अँगूठा लगवाते हो, बाद मे वह स्टाम्प पेपर हो जाता है। ऐसा तो पहले भी कर चुके हो तुम। जनाई मोड़ल, मुबल मैती सभी जानते हैं। पर, वे पुरुष थे। इस अबोला विधवा के साथ तुमने ऐसी ठगी की ?"

"ओह ! आप इसके भरन-पोषण की चिंता कर रहे हैं ? मैं दादा

करता हूँ कि जब तक यह जिन्दा रहेगी, इसके खाने-पीने की जिम्मेदारी मेरी है।"

भयंकर गुस्से से तेपांतरी की माँ चीख पड़ी थी—"लानत है तुम पर और मुझ पर अगर मैं तुम्हारी दी हुई भीख से पेट भरूँ। इसी पाप से घर में औरत बाँझ हुई पड़ी है। हमेशा तुम्हारी निगाह दूसरे के धन पर रहती है। ले लो जमीन मेरी, मगर समझ लेना गऊ का मांस खा रहे हो।"

"दिखाना जरा कागज...वाह! घर सहित खसरा न०...के पाँच बीघे खेत..."

"घर भी ले लिया?"

"इसी शोक में तेपांतरी की माँ जल्दी ही मर गयी। दनुज बाबू ने दयावश तेपांतरी को अपने घर में रख लिया, उन्होंने ब्याह नहीं किया था। पूरा जीवन पारटी के काम में लगा दिया था। घर पर रहते भी न थे। दनुज बाबू की बड़ी बहन ने तेपांतरी को रखने का प्रस्ताव किया था। घर में हजार काम होते हैं। यह लड़की रहेगी तो बड़ी सुविधा होगी।"

दनुज बाबू के घर के तेपांतरी को खाने-पहनने की जो सुविधा हुई तो वह बाद में नदी की तरह फूल-फैल गयी।

"बेटी, अब तुम्हारी उमर हुई। अब तुम्हें सँभलकर रहना चाहिए।"

"अच्छा बुआजी।"

"पोखरे-तालाब पर अकेली मत जाना।"

"नहीं, बुआजी।"

"बहुत अच्छी बेटी है मेरी।"

तेपांतरी बुआ की बात चुपचाप सुनती है। बहुत कम उमर में इस घर में आयी थी। इस घर के लोगों का व्यवहार जहाँ तक संभव था अपनापन वाला था पर वह एक दूरी बनाये रखती थी यह दूरी कम करने पर मुश्किल होती थी।

"बुआजी कह कर ऐसे पुकारती है जैसे अपनी भतीजी हो—"

दनुज की दीदी ने यह बात सैंकड़ों बार दोहरायी होगी। मगर अपनी जाति के लोग जैसे जयंत बाबू, अजामिल बाबू आते हैं तो उनकी लड़कियों को जैसे कपड़े खरीदती हैं वैसे तेपांतरी के लिए नहीं खरीदती। सभी को

दो-दो मिठाइयाँ देती हैं और तेपांतरी को एक। मांस-मछली इस घर में नही आती थी, बहन विधवा थी और देश के काम से बाहर ही रहते थे। घर आते थे तो भी निरामिष ही खाते थे, कहते थे—विधवा बहन के हाथों का बना खाते-खाते मांस-मछली के प्रति मेरी भी अरुचि हो गयी है।"

तेपांतरी का मन अनेक चीजों के लिए ललकता था। इस तरह के घर में सिर्फ नौकर होकर नही रहूँगी मैं, वह सोचती थी, मालिक बनूँगी।

माँ के बर्तन-भांडे और दूसरे सामान इसी घर में रखे हैं। उसे याद आता है माँ अपने घर की मालकिन थी। दनुज की दीदी ने तेपांतरी को कथरी की सिलाई के काम मे लगा दिया, बोली—"खाली टाइम में सिला करो, धूप मे बैठकर बाल सुखाते-सुखाते दो-चार टाँके मार दो। घर के काम से जब भी फुरसत मिले इसमे हाथ लगाओ। दो-चार दिन मे ही एक कथरी तैयार हो जायेगी। मजूरी के दो रुपये मिलेंगे। इसी तरह कुछ पैसे जमा कर लो। तुम्हारे ब्याह मे बहुत पैसे लगेंगे।"

ब्याह शब्द सुनकर तेपातरी खूब उत्साहित होती है। उसके लिए ब्याह का अर्थ है उसका अपना घर-द्वार, उसका अपना संसार।

दनुज बाबू के घर आते ही सब कुछ बदल जाता है। घर आते ही उनकी आँखें तेपांतरी को खोजती हैं। देखते ही! बोल पड़ते है—"आ मेरे पास आ जा। अरे! तू तो बहुत बडी हो गयी! मैंने तुझे तीन किताब खरीद कर दी थी। उनमे से पहली तो पढ़ ली होगी?"

"अब वह क्या पढ़ेगी! दीदी कहती हैं।"

"क्यो?"

"अरे! अब उसके ब्याह की फिक्र करो।"

"ओह! पर इसका ब्याह करने लायक घर और वर तो मुझे यहाँ कही दीखता नही।"

"इन्ही घरों और वरो में से देखना होगा।"

"क्या कह रही हो?"

"इसका ब्याह नहीं करना क्या? सतरह पार कर गयी।"

"सतरह साल भी कोई बड़ी उमर होती है क्या?"

"मानभंजन में यही उमर ज्यादा है।"

"अच्छा देखूँगा।"

दनुज बाबू ने देख-सुनकर तेपातरी का ब्याह पक्का कर दिया। काक द्वीप के आंदोलन के अपने साथियों में से एक के लड़के का चुनाव किया। लड़का तमलुक में बँटाई पर पान उगाता था। अच्छा खाता-पीता परिवार था। जाति भी एक ही थी। लड़का बड़ा होनहार था। इतनी कम उमर में ही उसने अपने लिए मकान बना लिया था। उम्मीद थी कि दो-चार साल में ही पान की खेती के लिए अपनी जमीन भी खरीदने का इरादा रखता था।

जमींदार घराने के होने के बावजूद दनुज बाबू के पास तीन बीघे धान की जमीन, तीन कट्ठा सब्जी का खेत और आधा दर्जन नारियल के के पेड़ थे। एक पोखरी में भी उनका हिस्सा था, पर उसमें से न वह कुछ लेते थे और न पाते थे। दीदी थीं, जो इतने में ही जोड़ बटोर कर उनकी गृहस्थी चलाती जा रही थीं। फिर भी तेपानरी के ब्याह में उन्होंने काफी खरच किया चाँदी की चूड़ियाँ और हार। नाक में, सोने के जेवर और अच्छे कपड़े।

दनुज और उनकी दीदी ने खूब दौड़-भाग की, बहुत स्नेह से यह भार अपने सिर से उतारा।

दीदी ने कहा—"तुमसे बहुत काम करानी थी मैं। कभी आराम करने नहीं दिया। माफ कर देना, बेटी।"

अड़ोस-पड़ोस के लोग और बिरादरी वाले कहते—"ओह! लगता है जैसे दीदी की अपनी बेटी विदा हो रही है। कितनी दुःखी लग रही है?"

दनुज भी विचलित हो उठे थे। लगता था कि वे कभी पढ़ा था—'नेह करि काहू सुख न लह्यो', यह कितना सच है। सभी कहते—"बेटी के लिए तुमने जो किया, ऐसा कम ही देखने को मिलता है।"

दनुज बाबू उत्तर देते—"भाई, हम लोग आदि पारटी के ... मैं तो पुरानी पीढ़ी के आदमी हैं हम। और फिर ... जितना किया, वह क्यों भूल रहे हो?"

गाँव के लोग जानते हैं कि जिसमें सामर्थ्य है वह गरीब को चूसेगा ही। मति सांतरा ने जिस तरह तेपांतरी के परिवार को ठगा, वह बुरा होते हुए भी पूर्णतया स्वाभाविक है। ऐसा तो होता ही है।

मति सांतरा ने बहुत से लोगों को ठगकर उनकी संपत्ति हड़प ली थी। शायद इस कारण कुछ लोग उसके प्रति प्रशंसा का भाव भी रखते थे। क्या आदमी है ! आजीवन इसको उसको ठगता रहता है, किसी गरीब को चंगुल में पा जाय तो कभी छोड़ता ही नहीं। इधर देखो, हर काम में आगे दौड़ता है।

"जैसा कर रहे हो, एक दिन उसका फल भोगोगे।"

यह बात आदमी कहता है, पर कहीं एक विमुग्ध प्रशंसा का भाव भी लगा रहता है। जो आदमी सभी तरह की शैतानियाँ करके भी धरा नहीं जाता, पंचायत, ब्लाक, जिला अदालत, थाना सब जगह जिसकी पहुंच है—वह जरूर बहुत चतुर है। यह बात सच है कि गरीब मार खा रहा है। पर छह आदमी को इधर-उधर से कुछ दिला कर, चार को वंचित रख कर मति सांतरा ने सर्वत्र अपनी धाक जमा रखी है।

यह जो तेपांतरी की माँ रो-रोकर मर गयी, हुआ कुछ ? और पटुए-'बाबू, घर बनाने की जमीन दिला दो' कहते हुए, कब से उसके पीछे घूम रहे हैं, कोई फायदा हुआ ?

अजामिल बाबू को बताने पर इसका प्रतिकार हो सकता है, यह भी गलत बात है। अजामिल बाबू ने मानभंजन को मति के हाथों में छोड़ रखा है। अभी मति का सूरज सातवें आसमान पर है।

मति जैसों को ही ज्यादा देखते हैं ग्रामवासी, दनुज जैसों को कम। इसीलिए सभी वंचित रह गये। हाँ, दुःखी को आश्रय दिया है, अच्छा ही काम किया है। सभी ने देखा है कि उससे तुम्हारी दीदी कितना काम लेती थी ? लेंगी ही, रोटी-कपड़ा आसमान से तो नहीं टपकते ?

अच्छा ही काम हुआ। बाबू का नाम भी हुआ और काम भी हुआ। किंतु बाबू का क्या काम था ?

तो क्या दनुज बाबू—उनकी उम्र चाहे जो हो—उस छोकरी पर आशिक हो गये थे ?

हो भी सकता है, कुछ लोग कहते।

अरे ! राम भजो ! कैसी बात करते हो, कुछ दूसरे लोग कहते।

मति सौंतरा भीतर-भीतर सबसे कहता फिरता था कि सारे काम तो अजामिल बाबू कर रहे हैं। अपना नाम नहीं जताना चाहते, इसीलिए दनुज बाबू को सामने कर दिया है।

सामने पड़ने पर वह दनुज बाबू के पाँव छूकर कहता है—"बड़े कुल में बड़ा ही पैदा होता है। दादा, तुमने उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। कितने दिनों तक देश के लिए त्याग किया, फिर गरीब के लिए···"

"अरे भागो ! ज्यादा बक-बक मत करो।"

"रुपये-पैसे कितने लगे ?"

"उससे तुम्हें क्या ? उसकी जमीन ठगी करके ले ली तुमने। उसकी जमीन उसके पास होती तो उसी से उसका ब्याह आराम से हो जाता।"

इस तरह की तमाम बातों के बाद तेपांतरी का ब्याह हुआ। ब्याह में तेपांतरी बहुत रोयी। दनुज बाबू कहते—तिपू, तेरा वर बहुत अच्छा है। उसके बाप पीताबर से मेरा परिचय था।' उन दिनों उसे बहुत कष्ट हुआ था। जहाँ भी जाने को कहो लाठी लेकर सन्न से निकल जाता।"

तेपानरी हँसकर कहती—"आप भी काका कमाल के आदमी हैं ! क्या अच्छे आदमी का यही परिचय है कि वह जहाँ कहो वहाँ लाठी लेकर चला जाय ?"

पाँच बराती लेकर ब्याह करने आया पीतावर। ब्याह हो जाने के बाद विदाई के पहले दीदी ने कहा—"आकर उसे हम लोगों से मिला जाना। इतने दिन यहाँ रही है। उसके बिना सूना घर देखा नहीं जायेगा हमसे।"

"जरूर लाऊँगा।"

घर के कमरे में जाने के पहले तेपांतरी मनसा तला के थान पर प्रणाम कर आयी। बुआ ने बार-बार कहा था इसके लिए। दनुज बाबू यह सब नहीं मानते।

"तू साँप के काटने से मरेगा, दनू।" दीदी चिढ़कर कहती।

"मरने का कोई बहाना तो चाहिए ? साँप के जहर से ही मही।"

वैसे ही भेजते हैं।"

"कितने दिन हो गये ?"

"पंद्रह-सोलह साल तो हो गये। पीतांबर सबसे छोटा है। वही पेट भर रहा है मेरा।"

तेपांतरी की माँ के कुछ काँसा-पीतल के बर्तन थे। दनुज बाबू ने उन पर कलई करा दी थी। फलस्वरूप वे झका-झक हो रहे थे, नये जैसे। तेपांतरी की देह पर भी गहने थे।

आजकल की आबोहवा अच्छी नहीं है। पीतांबर का छोटा-सा घर है। ब्याह के बाद उसके चेहरे पर एक अबोध हँसी खेलती रहती है। चमकते हुए बर्तन-भांडे और तेपांतरी के गहनों की बात बढ़-चढ़ कर आस-पास फैल गयी।

अफवाह के सिर-पैर नहीं होते। जमींदार की पालिता कन्या से पीतांबर का ब्याह हुआ है। बहुत दहेज मिला है। सब घर के कच्चे फर्श में गाड़ा हुआ है।

अफवाह पहले छोटी थी। बाद में उसका रूप और बड़ा हुआ, सुरसा के मुँह की तरह। सोने के गहने छिपाकर रखे हुए हैं। चाँदी के गहने तो दिखाने भर को हैं।

बिना कुछ जाने ही तेपांतरी की सास एक दिन उसके सारे गहने और बर्तन-भांड़े-सब कुछ पीताम्बर के मालिक शीतल बाबू की स्त्री के पास रख आयी।

मालकिन ने होंठ बिचका कहा—"इनके लिए तुम्हारे घर डाका पड़ रहा था क्या ? पीतांबर की माँ, तुम भी कमाल करती हो।"

"माँ, हम हीरा-मोती कहाँ पायेंगे ? हमारे लिए तो यही हीरा-मोती हैं।"

इस पर भी मुसीबत से पीछा नहीं छूटा। जिनकी नजर में आना था, वे हर बात पर नजर रखे हुए थे। आजकल चोर-डकैत और थाना-पुलिस के बीच चोरी के माल की हिस्सेदारी के आधार पर ही दुश्मनी या दोस्ती होती है।

पीतांबर के घर में छिपाये गये तथाकथित ऐश्वर्य की कहानी बहुत

"तू माँ को नहीं मानता ?"

"कितनी माँओं को मानूँ ? कितने बापों को मानूँ ? अपने माँ-बाप को मानता हूँ यह क्या कम है ?"

इसी तरह की बातें करते थे दनुज बाबू। खूब खरे आदमी थे। पर मूत्राशय के रोग से ग्रस्त होकर कलकत्ता के हस्पताल में कितने दिनों तक पड़े रहे। अभी भी रोग बीच-बीच में उभरता था। दवा करानी पड़ती थी।

मालीबेड़े में तेपांतरी मजे में थी। श्वसुर तो थे नहीं। सास कहती—"यह ब्याह दनू बाबू की बात पर हुआ। लड़की तो अच्छी है, पर अभागी है। माँ-बाप को खा गयी। जमीन-जायदात दूसरों ने हड़प ली।"

अभी तक किसी ने उसके माँ-बाप की मौत और जमीन-जायदात चले जाने के लिए उसे दोषी नहीं बनाया था।

पनबाड़ी का काम कठिन होता है। पीतांबर बाहर का काम सभालता तो तेपांतरी घर को सिर पर उठाये रहती। सास के दायें-बायें बनी रहती।

धीरे-धीरे सास भूल-सी चली थी कि तेपांतरी बिना माँ-बाप की और कुलक्षणी है। वह भी दनुज की दीदी की तरह कहने लगी—"अब तो घर का कोई काम नहीं है। आओ, तुम्हें खजूर की चटाई बनाना सिखा दूँ। हम दोनों मिलकर चटाई बनायेंगे। घर से ही बनिये खरीद ले जाते हैं। पैसे बहुत कम देते हैं, पर घर छोड़कर जाना भी कठिन है।"

"ये सब तुमने बुनी है क्या, माँ ?"

"हाँ, बेटी।"

"बहुत अच्छी हैं।"

"उसका बाप तो लड़ाई करता फिरता था···वह अपने आप नहीं जाता था। यही दनू बाबू बुलाकर ले जाते थे। कितनी ही बार घर-दुआर छोड़कर भागना पड़ा। यही सब करके बच्चों को पाला-पोसा।"

"और बेटे आपके नहीं आते ?"

"कहाँ आते हैं ? अंबर हलदिया में है, नीलाबर दुर्गापुर में। कौन, क्या करता है यह भी नहीं जानती। वे भी न कोई खोज-खबर लेते हैं, न

पैसे ही भेजते हैं।"

"कितने दिन हो गये ?"

"पंद्रह-सोलह साल तो हो गये। पीतांबर सबसे छोटा है। वही पेट भर रहा है मेरा।"

तेपांतरी की माँ के कुछ काँसा-पीतल के बर्तन थे। दनुज बाबू ने उन पर कलई करा दी थी। फलस्वरूप वे झका-झक हो रहे थे, नये जैसे। तेपांतरी की देह पर भी गहने थे।

आजकल की आबोहवा अच्छी नहीं है। पीतांबर का छोटा-सा घर है। ब्याह के बाद उसके चेहरे पर एक अबोध हँसी खेलती रहती है। चमकते हुए बर्तन-भांडे और तेपांतरी के गहनों की बात बढ़-चढ़ कर आस-पास फैल गयी।

अफवाह के सिर-पैर नहीं होते। जमींदार की पालिता कन्या से पीतांबर का ब्याह हुआ है। बहुत दहेज मिला है। सब घर के कच्चे फर्श में गाड़ा हुआ है।

अफवाह पहले छोटी थी। बाद में उसका रूप और बड़ा हुआ, सुरसा के मुँह की तरह। सोने के गहने छिपाकर रखे हुए हैं। चाँदी के गहने तो दिखाने भर को हैं।

बिना कुछ जाने ही तेपांतरी की सास एक दिन उसके सारे गहने और बर्तन-भांड़े-सब कुछ पीतांबर के मालिक शीतल बाबू की स्त्री के पास रख आयी।

मालकिन ने होंठ बिचका कहा—"इनके लिए तुम्हारे घर डाका पड़ रहा था क्या ? पीतांबर की माँ, तुम भी कमाल करती हो।"

"माँ, हम हीरा-मोती कहाँ पायेंगे ? हमारे लिए तो यही हीरा-मोती हैं।"

इस पर भी मुसीबत से पीछा नहीं छूटा। जिनकी नजर में आना था, वे हर बात पर नजर रखे हुए थे। आजकल चोर-डकैत और थाना-पुलिस के बीच चोरी के माल की हिस्सेदारी के आधार पर ही दुश्मनी या दोस्ती होती है।

पीतांबर के घर में छिपाये गये तथाकथित ऐश्वर्य की कहानी बहुत

"किसके पास ?"

"वह सब हम नही जानते। उसी दनुज बाबू के पास क्यों नही जाती? सारी जिंदगी हमारे बाप को तरह-तरह के झमेलों मे अटकाये रहा। कभी स्थिर होने नही दिया। फिर तुम जैसी एक कुलच्छनी को भाई की गर्दन पर रख दिया। उसका क्या बिगडा। गये तो मेरे माँ और भाई।"

तेपांतरी तब तक रोती रही, जब तक उसके आंसू नही सूख गये। किसी ने उससे कोई राय नही ली। उसके गहने और बर्तन-भाडे बेचकर उन दोनो मृत व्यक्तियों का श्राद्ध कर दिया गया। मँझला भाई बड़ा स्पष्ट-वादी था। उसने कहा—"इसी औरत के कारण मेरे भाई की जान गयी है। इसी का सामान बेचकर उसका श्राद्ध करना होगा, नही तो पाप लगेगा।"

श्राद्ध हो गया। उसके बाद सब कुछ छोडकर तेपांतरी को विदा होना पड़ा। पीतांबर का गमछा अलगनी पर लटकता रह गया। फूलों से लदे हुए नीबू और मिर्च के पौदे, कुम्हडे की लता, तुलसी का थान सब कुछ छोड़कर दस का एक नोट आंचल मे बांधकर तेपातरी बस-स्टैंड पर आ खडी हुई।

भाइयो ने पीतांबर का मकान बेचने का इरादा किया। खरीदार भी मिल गया। किसी ने याद दिलाया कि तेपांतरी को किराया भाड़ा देना चाहिए। वह दस का नोट इसी मद मे तेपातरी को दिया गया था।

बस में बैठकर तेपातरी सोचने लगी—कौन मुंह लेकर वहां जाऊँगी? उन्होने पालन-पोषण किया, ब्याह किया, अब फिर उनके सिर का बोझ बन गयी मैं। उसे पीतांबर की याद आयी, कहता था—"बड़े भाग से तुम्हारे जैसी औरत किसी को मिलती है।"

सास कहती थी—शुरू-शुरू मे मन को ज्यादा नहीं भायी थी। पर इसने ऐसी माया फैलायी कि क्या कहूँ? कितनी सेवा करती है मेरी। और व्यवहार इतना मीठा है। होना भी चाहिए। बाबू लोगों के घर पली है।

वही तेपांतरी अब कितनी बुरी बन गयी है?

लोग कहते—ऊपर से सीधी दीखती है, अंदर पेंच है इसके। गहना दिखाकर पोखरी मे नहाती थी, रूप दिखाकर आंगन में कपडे फैलाती

दूर-दूर तक फैल गयी। फलस्वरूप पीतांबर के घर में डाका पड़ा। डकैती समय का नियम मान कर पड़ती है। रात में डकैती पड़ने पर आस-पास के लोग घर से बाहर नहीं निकलते। यह भी समय का नियम है। कौन चाहता है सिर पर लाठी और पेट में चाकू खाना? समय ही बताता है—'चाचा, खुद को बचा।' दूसरे के लिए जीवन-दान अब सिर्फ पाठ्य पुस्तकों तक सीमित है। असलियत मे अब इसे मूर्खता का पर्यायवाची माना जाता है। नवकुमार और नफर कुडू का जमाना लद गया।

पीतांबर ने डाकुओं का सामना किया। घर के तीनों आदमी जख्मी हुए। डाकुओं में से एक को पहचान कर जब पीतांबर की माँ चील की तरह उसका नाम लेकर झपटी तो डाकुओं ने उसका गला दबा दिया। घर की अच्छी तरह खोज-बीन करने के बाद भी जब डाकुओं को वे सब कीमती चीजें नहीं मिलीं, जिनकी चर्चा सुनकर उन्होंने धावा बोला था, तो वे अपना-सा मुँह लेकर चले गये।

डाकुओं के चले जाने के बाद तेपांतरी धाड़ मार-मारकर रोती रही और बेहोश हो गयी। अड़ोस-पड़ोस के लोग भी जमा होने लगे।

"पुलिस के पास जाओ," एक आदमी ने कहा।

"पहले इन्हें अस्पताल ले चलो, दूसरे ने कहा।

"पुलिस ले जायेगी।"

"लगता है एक आदमी का काम तमाम हो गया।"

"तुम दूर रहो। पुलिस आकर सब सँभाल लेगी।"

पुलिस आयी। घर को राम भरोसे छोड़कर तीनों प्राणी पुलिस की जीप में ले जाये गये। हस्पताल में सिर्फ तेपांतरी को चिकित्सा के लिए भर्ती किया गया। पीतांबर और उसकी माँ को चिकित्सा की जरूरत नहीं थी। वे डाकुओं के हाथों परलोक भेजे जा चुके थे।

तेपांतरी जब हस्पताल से ठीक होकर वापस आयी तो घर में उसके दो-दो सुयोग्य श्वसुर उपस्थित थे। ये वही लोग थे जो गत पंद्रह-सोलह वर्षों से अपनी माँ के दर्शन करने नहीं आये थे।

दोनों ही ने तेपांतरी को सलाह दी—"बेटी, तुम मानभंजन लौट जाओ।"

"किसके पास ?"

"वह सब हम नहीं जानते। उसी दनुज बाबू के पास क्यों नहीं जाती? सारी जिंदगी हमारे बाप को तरह-तरह के झमेलों में अटकाये रहा। कभी स्थिर होने नहीं दिया। फिर तुम जैसी एक कुलच्छनी को भाई की गर्दन पर रख दिया। उसका क्या बिगड़ा। गये तो मेरे माँ और भाई।"

तेपांतरी तब तक रोती रही, जब तक उसके आंसू नहीं सूख गये। किसी ने उससे कोई राय नहीं ली। उसके गहने और बर्तन-भाड़े बेचकर उन दोनों मृत व्यक्तियों का श्राद्ध कर दिया गया। मँझला भाई बड़ा स्पष्ट-वादी था। उसने कहा—"इसी औरत के कारण मेरे भाई की जान गयी है। इसी का सामान बेचकर उसका श्राद्ध करना होगा, नहीं तो पाप लगेगा।"

श्राद्ध हो गया। उसके बाद सब कुछ छोड़कर तेपांतरी को विदा होना पड़ा। पीतांबर का गमछा अलगनी पर लटकता रह गया। फूलों से लदे हुए नीबू और मिर्च के पौदे, कुम्हड़े की लता, तुलसी का थान सब कुछ छोड़कर दस का एक नोट आंचल में बांधकर तेपांतरी बस-स्टैंड पर आ खड़ी हुई।

भाइयों ने पीतांबर का मकान बेचने का इरादा किया। खरीदार भी मिल गया। किसी ने याद दिलाया कि तेपांतरी को किराया भाड़ा देना चाहिए। वह दस का नोट इसी मद में तेपांतरी को दिया गया था।

बस में बैठकर तेपांतरी सोचने लगी—कौन मुंह लेकर वहां जाऊंगी? उन्होंने पालन-पोषण किया, ब्याह किया, अब फिर उनके सिर का बोझ बन गयी मैं। उसे पीतांबर की याद आयी, कहता था—"बड़े भाग से तुम्हारे जैसी औरत किसी को मिलती है।"

सास कहती थी—शुरू-शुरू में मन को ज्यादा नहीं भायी थी। पर इसने ऐसी माया फैलायी कि क्या कहूं? कितनी सेवा करती है मेरी। और व्यवहार इतना मीठा है। होना भी चाहिए। बाबू लोगों के घर पली है।

वही तेपांतरी अब कितनी बुरी बन गयी है?

लोग कहते—ऊपर से सीधी दीखती है, अंदर पेंच है इसके। गहना दिखाकर पोखरी में नहाती थी, रूप दिखाकर आँगन में कपड़े फैलाती

थी। नहीं तो ऐसा होता है कहीं ?

"माँ, मुझे यहाँ आश्रय नहीं मिलेगा ?" तेपांतरी ने पीतांबर की मालकिन से पूछा।

"बच्चा तुम्हारे पाँव में शनि है। कौन रखेगा तुम्हें ? एक तो अमंगली हो, दूसरे जवान हो। तुम्हारी जिम्मेदारी लेने में बहुत खतरा है।"

बस में बैठे-बैठे तेपांतरी को लगा जैसे उसके शरीर में से सारा रक्त चू गया है। दुनिया में मानभंजन को छोड़कर और किसी जगह से उसका परिचय नहीं है। पर वहाँ भी उसका कौन है ? न कोई अपने घर का है न कोई अपनी बिरादरी का। दादा जमींदार के प्यादा थे। जरा-सी बात पर गरीब आदमी की गर्दन पर हाथ रख देते थे।

आज भी गाँव में लोग उस बात को भूले नहीं हैं। दादा चले गये; पिता चले गये, माँ की जमीन मति बाबू के पेट में चली गयी, फिर भी लोग उसे अजीब नजरों से देखते हैं।

दनुज बाबू का आश्रय मिलने पर लोगों का आक्रोश बढ़ा ही था। जिनकी ओर से तेपांतरी का दादा गरीबों को मारता-पीटता था, उन जयंत बाबू और अजामिल बाबू के प्रति लोगों में उतना आक्रोश नहीं था। तेपांतरी की जमीन की बात उठती तो लोग कहते—"दादा, जमींदार का लठैत था, इसीलिए उसे जमीन मिली थी। पाप का धन था। कितने दिन टिकता।"

बस से उतरकर तेपांतरी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है। पाँव जैसे उठना नहीं चाहते। नहर में कितना पानी भरा हुआ है, पुल पर से गुजरते हुए तेपांतरी सोचती है।

"क्या करूँ ? पानी में कूद पड़ूँ ?"

"मगर यह तो पाप होगा।'

एक बार मन स्थिर हुआ तो उसने सिर पर घूँघट डाल लिया और तेजी से चल पड़ी। सभी अवाक् होकर देख रहे थे। घूँघट के बावजूद पहचानने में कोई परेशानी नहीं हो रही थी। अभी उस दिन सजधज के अपने पति के साथ गयी थी। बरस बीतते न बीतते ऐसे वेष में वापस कैसे आ गयी ?

दनुज बाबू के घर में प्रवेश का पथ खिडकी के भीतर से था। खिड़की पर ताला लगा देखकर और खिडकी के दोनों ओर उगे झाड़-झखाड़ को देखकर तेपांतरी के हाथ-पाँव फूल गये। बात क्या है ?

उदास होकर तेपांतरी पोखरे के किनारे आकर बैठ गई। कुछ देर बाद कुछ लोग आपस मे बात-चीत करते उधर आये।

पास आने पर तेपांतरी ने पहचान लिया। वह दनुज बाबू का आसामी जनाई मोड़ल था। उसके साथ कोई आदमी नही, बल्कि उसके बैल थे। जनाई का अपने जानवरो से बातें करने का शौक था। जनाई कह रहा था—"आखिर बैल हो न ! रास्ता दिखा रहा हूँ फिर भी कीचड़ में उतर रहे हो। रहो, अभी तुम्हारा बैलपना छुड़ाता हूँ।"

तेपांतरी ने देखा बैल जनाई के मारने के उद्दत हाथों को चाटने लगा था।

"रहने दे, रहने दे···अरे तेपांतरी तू !"

"हाँ, काका। वे लोग कहाँ हैं ?"

"तुझे पता नही क्या ?"

"क्या ?" तेपांतरी का दिल धड़क उठा।

"बाबू बहुत बीमार हैं।"

"क्या हुआ है ?"

"छाती में रोग हो गया है, समझी ? बाबू को लेकर दीदी कलकत्ता गयी थी। फिर उनके भतीजो ने—उनके अपने भतीजों ने—अपने गाँठ से पैसा खर्च करके जगन्नाथ धाम में रख दिया है।"

"कितने दिन हुए ?"

"चार महीने से ऊपर हो गये। तुम कैसे आयीं ?"

तेपांतरी ने थोडे से शब्दों में सूखे गले अपना हाल सुना दिया। उसकी आँखों में आँसू सूख गये थे,

"तो अब क्या करेगी ?"

"क्या करूँ ?"

"यह तो अच्छी मुसीबत मे फँस गयी तुम।"

"काका, क्या करूँ, तुम्हीं कुछ बताओ।"

"तुम तो जानती हो, मैं बाबू के ही घर रहता हूँ। बहू मर गयी; बच्चे सब अपनी-अपनी राह गये। मति बाबू ने मेरे साथ भी वही खेल खेला···अगर बाबू आँखें मूँद लें तो दीदी शायद यहाँ नही आयेंगी।"

"कहाँ जाऊँ!" तेपांतरी अपने आप से पूछती है।

"बच्चा, सुनो। थोड़ा-सा भूजा पड़ा है, पहले खा लो। थोड़ा-सा आराम कर लो, फिर देखता हूँ···"

"तुम क्या देखोगे काका?"

"देखो बेटी, तुम्हारा इस घर में रहना ठीक नही होगा। मैं अकेला रहता हूँ। पाँच आदमी पाँच तरह की बातें करेंगे।"

तेपांतरी चुप होकर सोचने लगी—'शायद सचमुच मैं कुलच्छनी हूँ। सभी लोग क्या झूठ बोलेंगे? अब फिर मेरे कारण पता नही इनका कौन-सा अहित हो।'

पोखरे के पानी में हाथ-मुँह धोकर तेपातरी ने भूजा खाया, पोखरे का पानी पिया और जनाई से विदा लेकर चल पड़ी। जनाई भीगी आखों से उसे जाते हुए देखता रहा।'

तेपांतरी गाँव के बीच वाली सड़क पर चलने लगी। जयंत बाबू, अजामिल बाबू, दनुज बाबू सभी के घर एक के बाद एक थे। बीच में आम-कटहल का एक बाग था, जो अब तरह-तरह के झाड़-झंखाड़ से पटा पड़ा था। दनुज बाबू के मकान से सटे हुए बाग मे से लोग आते-जाते थे।

एक पेड़ से टिककर तेपातरी बैठ गयी, सोचने लगी—अगर कोई मारकर न भगाये तो अजामिल बाबू के टूटे गोशाले में रह लूँगी। पर क्या वे मुझे रहने देंगे?

"कौन? कौन है वहाँ?"

तेपातरी चौंक पड़ी।

"नाटा सरदार की पोती हो न तुम?"

"तुम नमी पोटो के लड़के कुशल हो न?"

"खूब पहचाना।"

"पहचानूँगी क्यों नही? कहाँ गये थे?"

"पहले तुम बताओ यहाँ कैसे बैठी हो?"

"अपनी किस्मत को रो रही हूँ। अच्छा, बताओ तुम कहाँ गये थे ?"

"सक्रांति आने वाली है न ? इसलिए पाँच आदमियों को गाने का न्यौता देने गया था।"

"कुछ हुआ ?"

"आजकल लोग पुराने गाने सुनने को राजी नहीं हैं और न पट देखने को। कहते हैं तसवीर देखनी होगी तो सिनेमा देखेंगे और गाना सुनना होगा तो रेडियो सुनेंगे।"

"ओह !"

"हमारी औरतें पुतलियाँ बनाती थीं, अब मूर्ति बनाती हैं, मिट्टी की। पर लेनेवाला ही नहीं है कोई। पिछली सरस्वती पूजा के मौके पर मति बाबू से कितनी विनती की हमने, कहा—"बाबू, आप इतने रुपये खर्च करके शहर से मूर्ति लाते हैं। हम गाँव के पटुए तो इससे बहुत कम दाम में बना देंगे।"

"माने नहीं ?"

"नहीं, बोले—'पर पाँच आदमी जो कहेंगे, वही होगा। पब्लिक वैसी ही मूर्ति चाहती है। वैसी भगिमा, वैसा मुँह, तुम लोग नहीं गढ़ सकते।"

कुशल भी अपार दुःख में है, इस बात से तेपांतरी को जैसे बल मिला।

"तुम्हारा बाप तो नामी पटुआ था ?"

"उनके पट भी अब कौन देखना चाहता है ?"

"बड़े दुःख की बात है।"

"मनसा मेला में भी कहीं हम लोगों का गाना बंद न हो जाय। मेला अब बाबू लोगों के हाथ में है। सुना है शहर से 'यात्रा' (लोकनाट्य) आयेगी।"

"वह भी शहर से ?"

"सब कुछ शहर से। गाँव के मनसा पाला अब कहाँ है ? कहीं भी तो नहीं देखता। पहले के मेलों में सभी के साथ भेंट-मुलाकात होती थी।"

"पता नहीं क्या होनेवाला है ?"

"हम कुछ घर पटुओं के मारे जा रहे हैं। कितनी दरखास्तें लिखीं, कितनी मिन्नतें कीं—घर बनाने की जमीन और थोड़ी-सी खेती की जमीन

के लिए। पर कौन सुनता है ?"

"कुछ भी नहीं हुआ ?"

"नहीं।"

"दनू बाबू ने भी कुछ नहीं किया ?"

"उनका वश ही नहीं चलता।"

"मेरा क्या होगा, बताओ तो ?"

"क्या हुआ पहले यह तो सुनूं।"

तेपांतरी ने फिर वही बातें दुहराईं जिन्हें जनाई से कही थी। सुनते समय कुशल करुणा से सिर हिलाता रहा। पूरी कहानी सुनने के बाद उसने कहा—"जिस आदमी ने तुम्हारे पेट पर लात मारा है, उसको छोड़कर कोई तुम्हारी मदद नहीं करेगा।। कोई चाहे भी तो उससे पूछे बिना साहस नहीं करेगा। उसे नाराज करने की हिम्मत किसी में भी नहीं है। दनुज बाबू में हिम्मत थी। वह बाबुओं के घर के हैं। वह तुम्हें खिला भी सकते थे। पर वे तो इस समय बहुत बीमार हैं।"

तेपांतरी ने गहरी सांस ली। फिर बोली—"तुम जाओ, भाई। मैं भी जाकर मनसा के थान पर सो रहूँगी। थोड़ी हिम्मत आ जाय तो जिधर सींग समायेगा उधर चली जाऊँगी।

"मेरे साथ चलो।"

"कहाँ ?"

"हमारे पुरवा पर ?"

"कहाँ रहूँगी ?"

"भाभी बुढ़िया से कहता हूँ। वह तो अकेली रहती है। उसके घर पर रहने का ठिकाना हो जाय तो कोई काम-धंधा देख लेना।"

"ठीक है। भाभी से पूछ देखो।"

मनसा थान की पक्की छत के नीचे पड़ी-पड़ी तेपांतरी सोच रही थी —'पोटोपाड़ा जाकर रहूँ ? चलो, और कोई रास्ता नहीं है तो वही सही। खेत कोड़कर, मेहनत-मजदूरी करके जी लूँगी। ठीकेदार के लोग मजूर ढूंढ़ने आयेंगे तो उनके साथ चली जाऊँगी।'

तेपांतरी के लौट आने की बात गाँव में आग की तरह फैल गयी।

शाम को मति सांतरा खुद पोटोपाड़ा आकर हाजिर हुआ। वह बहुत गुस्से में था।

"कुशल कहाँ है, कुशल ?"

"कहिए बाबू।"

"तेरे बाप को मैं बड़ा भाई मानता था। उसकी बीमारी में खबर पूछने आता था और तू ऐसी हरकत कर रहा है? कैसा आदमी है रे तू?"

"मैंने ऐसा क्या किया, बाबू ?"

'मानता हूँ कि तुम लोगों के लिए जमीन की व्यवस्था नहीं कर पाया मैं। घर के बिना कष्ट ही रहा है तुम्हें।"

"आप कोशिश तो कर रहे हैं।"

"इसीलिए क्या तू···सुना है तू तेपांतरी को इस मोहल्ले में ले आया है। ऐसा भी कहीं होता है ?"

"भामी बुढिया के घर मे···कहती थी रहने को जगह नहीं है।"

"दनू दादा का यह कैसा काम है।"

"पर वह तो आये नहीं है।"

मति ने मन-ही-मन हिसाब लगाया। पटुए कुछ ही घर हैं। पर उनके मोहल्ले में चढकर झगड़ा करना ठीक नहीं होगा। आजकल आदमी का कोई भरोसा नहीं। पता नहीं कौन, किस बात पर चिढ़ जाय! और अँधेरे मे सिर पर लाठी मारने मे क्या लगता है? उसने कंठ स्वर बेहद नरम कर लिया, जैसे इस दुनिया मे कुशल से ज्यादा कोई उसका अपना नहीं है।

"अरे भाई, मैं समझता हूँ कि तुम्हें उस पर दया आयी होगी, इसी-लिए तुमने यहाँ उसे बुला लिया होगा। मगर एक बात जान लो कि गाँव मे सभी मति सांतरा नहीं हैं। मानभंजन के आदमियो के मन में बड़ा जहर है। अगर तेपातरी यहाँ रहे तो सभी कहेंगे कि हिंदू लोग एक गरीब विधवा औरत का पेट नहीं पाल सके। तभी तो वह पटुओ के मुहल्ले मे गयी।"

"मैंने इतना नहीं सोचा था, बाबू।"

"तुम दो-चार घर पटुए हो। मान लो- हिंदू नाराज हो गये और दंगा हो गया तो क्या होगा? और सरकार भी यह सब पसंद नहीं करती।"

"ऐसा तो पहले कभी नहीं हुआ, बाबू।"

"होने में कितनी देर लगती है, कुशल?"

भामी बुढ़िया खाँसते हुए बोली—"बाबू तुम लोग उसका इन्तजाम करो। हमारी बिरादरी का पुस्तैनी काम तो चूल्हे मे चला गया। मजदूरी भी नहीं मिलती। हमारी बिसात नहीं है उसे खिलाने की।"

"देखता हूँ। कुछ करना पड़ेगा! जवान लड़की है इसीलिए कुछ करना ही पड़ेगा।"

"बेचारी बहुत मुसीबत मे पड़ गयी है।"

"पड़ेगी नही? यह सब दनुज दादा का किया हुआ है। कहा था, लड़की का ब्याह यहीं-कहीं करदो, हमलोग देखभाल करते रहेंगे। वह तो किया नही। ले गये लड़की को किसी लंका में ब्याहने। अब आ गयी न सब कुछ खोकर, विधवा होकर। ओह! बेचारी तेपांतरी!

मति सौतरा उसके बाद मनसा के थान पर गया। गहरी ममता से च. च: च· करते हुए बोला—"तेपांतरी! उठो बेटी! मति के जिंदा रहते तुम्हें पोटोपोड़ा नही जाना होगा।" तेपांतरी बेहद डर गयी। इधर-उधर देखा। मति उसे चलने को कह रहा है। वह नही जाना चाहती है, पर इस आदमी को मना करने पर मानभजन में ऐसा कोई नहीं है, जो इस आदमी के गुस्से से उसे बचा सके।

"जानती हो बेटी, इस समय बहुत-सी बातें मन में उठ रही हैं। देखो, जिसने मनुष्य को बनाया है उसी ने उसके मन में लोभ, क्रोध आदि विकार भी पैदा किये है। मैंने लोभवश तुम्हारे साथ अन्याय किया है यह भी जानता हूँ। अब तुम चलो। कुछ रोज खाओ-पियो, आराम करो। फिर मैं कोई काम सिखाकर तुम्हारी रोजी-रोटी की व्यवस्था कर दूँगा। चलो, उठो।"

तेपांतरी फिर भी पत्थर की मूर्ति-सी बैठी रही।

"उठो बेटी, बदमाश लोग ऐसे ही मौकों की तलाश मे रहते हैं। तुम्हारी उमर में औरत के लिए कदम-कदम पर मुसीबत है।"

"दनू काका को खबर दे दीजिए।"

"दे दूँगा। वैसे कोई लाभ नही है। फिर भी तुम कहती हो तो···"

"लाभ नहीं है ?"

"हाँ, उधर के समाचार भी अच्छे नहीं हैं।"

मति यह वाक्य धीमे गले से ऐसी मुद्रा बनाकर कहता है जैसे मृत्यु-संवाद दे रहा हो।

तेपांतरी उठ खड़ी होती है। उसके जीवन को लेकर जब हमेशा दूसरे ही फैसला करते रहे हैं तो अब वह बाधा कैसे देगी, और क्यों देगी ? मति के पंजे से छूटेगी कैसे ? मति ने एक बार पंजा मारा था तो उसकी सारी जमीन हड़प ली थी। अब दुबारा वह फिर उसके पंजे में आ गयी है।

"इसके अलावा तुम अगर पोटोपाड़ा में रहो, तो इस बात को लेकर हिंदू और मुसलमानों के बीच अशांति फैल सकती है। उनके घर जला दिये जायेंगे।"

"चलिए।"

नहीं, अब उसे लेकर कहीं आग लगे, कोई दुर्घटना घटे, यह नहीं चाहती तेपांतरी ! मृत पीतांबर का चेहरा अभी भी उसके चारों ओर नाच रहा था। मगर एक बात उसने जीवन में पहली बार जानी कि पटुए मुसलमान होते हैं। वे तो हिंदू देवी-देवताओं के गीत गाते हैं। मुस्लिम-समाज में उनकी क्या जगह है ?

मति के पीछे-पीछे यंत्रवत चल रही है तेपांतरी। मति सोच रहा था—दनू बाबू के घर तेपांतर की घर की बेटी जैसी मर्यादा थी, बहुत अच्छी तरह रखते थे वे लोग। लगता है ससुराल में भी खाने-पहनने की तकलीफ नहीं थी। चेहरा कैसा चमक रहा है ! पर दुखी बहुत लगती है। पति जवान था, प्यार भी खूब करता होगा।

मति जवान नहीं रहा। जवानी से उसको बड़ी ईर्ष्या है। पहले वह तरह-तरह की जड़ी-बूटियों का इस्तेमाल करता था। पर उसकी पत्नी बीमारी में सूखकर काँटा हो रही है। अब किसी लायक नहीं रही और मति भी अब 'पब्लिक मैन' है। चाहने पर रंडियों के पास भी नहीं जा सकता। 'पब्लिक मैन' का काम बड़ा कठोर होता है। मति सांतरा अपने भीतर के ऐय्याश मति को काबू में रखने को बाध्य है।

मति की पत्नी अणिमा इस बात से खुश नहीं हुई। सांय-सांय करते

लगी। थोड़ी देर के बाद मति भी नाराज हो उठा। अणिमा उसके गुस्से से बहुत डरती है। डरने की बात भी है।

"मेरे रहते वह क्या रास्ते की भिखारिन बनती?"

"कहीं और नहीं रख सकते?"

"और है कौन उसका? जाओ, छोटा कमरा उसे दिखा दो। कुछ खाने को दे दो।" फिर कंठ-स्वर बहुत नीचा करके बोला—तुम से जरूरी बात करनी है।

छोटा कमरा निहायत छोटा था। चौकी के नीचे ढेर सारे मिट्टी के तेल के ड्रम पड़े थे। अलगनी पर कुछ तिरपाल और दरियाँ झूल रहे थे।

"आज का दिन यहाँ काटो। कल कोई और अच्छी व्यवस्था करेंगे।

अँधेरे कमरे में एक दरी बिछाकर तेपांतरी लेट गयी। शरीर और मन दोनों इतने थक गये थे कि लेटते ही नींद आ गयी।

उधर मति अपनी पत्नी को समझा-बुझा रहा था।

"इसे यहाँ क्यों लाया, जानती हो?"

"मैं क्या जानूँ? कुलच्छनी औरत!"

"वह सब बेकार की बातें छोड़ो।"

"ठीक है, काम की बात बोलो।"

"तुम्हारी जो हालत है वह तो देख ही रही हो।"

"तुम्हारे साथ रहकर हालत इससे अच्छी भी क्या होनी थी?"

"बकवास करोगी तो गला दबा दूँगा।"

अणिमा डरकर मति का मुँह देखने लगी।

"देखो, दनू दादा के यहाँ यह लड़की सारे घर का काम सिर्फ खाने-कपड़े के बदले में करती थी। यहाँ रहेगी तो घर की हालत सुधर जायेगी। इसके अलावा भी इसे हाथ में रखना जरूरी है। इसको सामने करके इसकी जमीन को लेकर कोई भी आदमी झमेला कर सकता है। तुम नहीं जानतीं, शहर के कुमुद जाना ने इसी तरह के मुकदमे करके कितनी संपत्ति पैदा की है।"

"हमारे पास भी तो संपत्ति की कमी नहीं है।"

"संपत्ति भी किसी को काटती है ?"

"पर खायेगा कौन ?"

"होगा, होगा तुम्हें किसी डाक्टर को दिखाते हैं।"

"डाक्टर, वैद्य, पूजा-पाठ सब तो हो चुका। दुबारा डाक्टर को दिखाने से क्या होगा ?"

"होगा क्यों नहीं ! कलकत्ता के बड़े डाक्टर को दिखायेंगे।"

"मैं मर जाती तो तुम दूसरा ब्याह कर लेते। वंश तो चलता।"

"अशुभ बात मत बोलो।"

"कितना कहा वंश के किसी बच्चे को गोद ले लो।"

"नहीं, उससे कोई फायदा नहीं।"

"छोड़ो, तुम क्या कह रहे थे ?"

"कुमुद जाना का मुंशी मेरे पीछे लगा हुआ है। कहता है—मैं कोई खर्च नहीं लूंगा। केस जीत जाने पर आधी जमीन मेरी होगी।"

"क्या वह इस जमीन पर खेती करेगा ?"

"नहीं, बेच देगा ? ऐसा ही करता है।"

"सचमुच ?"

और क्या !"

"ठीक है, जैसा उचित समझो करो, पर जवान लड़की है। मुझे तो डर लगता है।"

"मुझसे डर लगता है ?"

"औरतों का डर कभी नहीं जाता।"

संयोग की बात कि दूसरे ही दिन अणिमा के पेट में तेज दर्द शुरू हो गया। तेपांतरी ने मालिश वगैरह करके उसे ठीक कर दिया।

कुछ ही दिनों में तेपांतरी ने अणिमा की गृहस्थी का चेहरा ही बदल दिया। अणिमा के शरीर में अनेक रोग थे। तेपांतरी की समझ में नहीं आता था कि इतने सुखी घर में इतने रोग कहाँ से आये ?

अणिमा अगर स्वस्थ होगी तो बहुत मीन मेख निकालती, पर वह अपने अफारा, श्वास कष्ट आदि में ही व्यस्त रहती थी।

'पब्लिक मैन' मति सौंतरा पब्लिक की सेवा में लगा रहता था। दुकान

में कम ही बैठता था। एक लड़का रख छोड़ा था। मिट्टी का तेल, कपड़े वगैरह वह घर से ही बेचता था। वैसे भी सभी चीजों का स्टॉक घर में ही रहता था। इतनी चीजों की साज-सँभार कोई हँसी-खेल तो न थी। लोग भी बहुत मिलने आते थे। तेपांतरी को दिन मे पीतांबर की याद करने की भी फुर्सत न थी और रात में बिस्तर पर पड़ते ही बेहद थकी होने के कारण वह सो जाती थी।

इन दिनों अणिमा की तीमारदारी के लिए वह अणिमा के सोने के कमरे के पास वाले कमरे में सोने लगी थी। अणिमा की उसके लिए चेतावनी थी—"कमरे का दरवाजा बंद रखो। रात मे कोई बुलाये तो भी मत खोलो। बहुत जरूरी होने पर बाहर निकलना हो तो बताशी को साथ में ले लो। वह तुम्हारे कमरे मे ही फर्श पर सोयेगी।"

रोज ही रात मे पीतांबर को याद करने का इरादा करके वह लेटती है और रोज ही नींद तेज नशे की तरह उसे बेहोश कर जाती है। भयानक खटनी है इस घर मे, काम जैसे खत्म ही होना नहीं चाहता। उसकी बहुत इच्छा करती है कि वह बाहर निकले, थोड़ा घूमे-फिरे।

मगर ऐसा होना संभव नहीं लगता। जरा-सा भी व्यतिक्रम पड़ने पर मति के पास खबर पहुँच जाती है।

बताशी के साथ उसकी अनेक बातें होती हैं। बताशी ममता के साथ उसकी बातें सुनती है। तेपांतरी के आने से बताशी को भी फुर्सत मिली है। वह कहती है—"बेटी, यह जो छोटे-मोटे ढेर सारे काम तुम कर डालती हो, इन्हें पहले मुझे ही करना पड़ता है। मुझे तो बहुत आराम मिला तुम्हारे कारण। हमारे लड़के भरत के मरने के बाद···"

"क्या हुआ ?"

"भरत के मरने पर बाबू ने मुझ से कहा—'तुम मेरे घर चलकर रहो। अपनी बिरादरी की हो, कोई ग़ैर नहीं। तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ?'"

"जमीन-जायदाद नहीं थी ?"

"एक पोखरी थी," बताशी ने फुसफुसा कर कहा।

"उसका क्या हुआ ?"

"उसको पटवाकर बाबू ने वहाँ नारियल के पेड़ लगवा दिये।"

"वही बड़ा-सा नारियल का बाग ?"

"हाँ, बच्चा। मुझसे कहा—'मेरे पास जमीन जमा कर दो। मैं तुम्हारी पूरी जिम्मेदारी लेता हूँ। अपने घर के आदमी की तरह रखूँगा, तीरथ-बरत कराऊँगा।' कितने ही वायदे किये थे इस आदमी ने।"

"तीरथ कराये थे ?"

"तीरथ क्या करायेगा ? एक बार गंगा सागर गयी थी, वह भी बहूरानी ले गयी थी।"

"वे क्या हमेशा की रोगिणी है ?"

"पहले इतनी नहीं थी। खटते-खटते शायद उनकी यह हालत हुई है। मैं ही क्या कम खटी हूँ ? तुम भी इतना मत खटो। पागल है क्या यह आदमी ? सभी को ठगकर इतनी धन-संपत्ति एकत्र कर रहा है। खायेगा कौन ? बहूरानी कितना कहती है कि अपने भतीजे को गोद ले लो। मगर सुनता ही नहीं। मरने पर आखिर में उन्हीं को मिलेगा।"

"हाँ, हक तो उन्हीं का बनता है।"

"तुम एक दिन काशी ले चलो मुझे ! जरा आँख दिखाना चाहती हूँ हस्पताल में।"

"मुझे तो रास्ता नहीं मालूम।"

"मुझे मालूम है। पर अकेली जाने में डर लगता है।"

"पूछकर देखूँगी। बाहर निकलना, किसी के साथ बात करना इन्हें पसंद नहीं।"

"डरते हैं।"

"किस चीज से ?"

"यही जानें।"

"क्या पता !"

"तेपांतरी, तुम्हारा पति अपघात में मरा है। मंदिर में जाकर चढ़ाती तो उसे शान्ति मिलती।"

"पति ! !"

अचानक जैसे इस घर का सब कुछ बड़ा गहिन लगा तेपांतरी को। घर के अंदर सब-कुछ बड़ा अजीब है। चारों ओर गुड़-तेल और केरासिन

की महक भरी रहती है। खाना बनाओ, फिर कपड़े धोओ, फिर आंगन की धुलाई करो। बस, काम-काम-काम।

दनू बाबू के घर आंगन में जो बटहल का पेड था वह नीचे को झूला पडता था। दरवाजा खोलते ही पोखरी और बागीचा दीखते थे। सब-कुछ बड़ा खुला-खुला-सा था।

तेपांतरी ने एक दिन अणिमा से कहा—"आजकल मन बड़ा दुखी रहता है। थोड़ा काल-मंदिर तक जाना चाहती हूं।"

"कोई मानता है क्या ?"

"नही, यूं ही।"

ससुर ने जो दस रुपये दिये थे उसका अधिकांश अभी भी तेपांतरी के आंचल में बंधा था। उसने उन पैसों को संभाल कर रखा था। अणिमा ने उसे एक पुराना बक्सा दिया था। अपनी दो साड़ियां दी थी और कभी-कभी एक-दो रुपये भी देती थी।

मंदिर में मिठाई का दोना जितना बड़ा होता है पूजा उतनी ही बढ़िया होती है। तेपांतरी ने दो रुपये की मिठाई खरीदी। मंदिर के चबूतरे पर बैठकर जो लोग ताश खेल रहे थे उन्होंने कौतूहल से उसे देखा।

"पूजा देनी है ?" पुरोहित ने पूछा।

"हां।"

"कोई मानता है ?"

"नही, यूं ही।"

हाथ जोड़ कर तेपांतरी ने आंखें मूंद ली। कुछ खास नहीं है मांगने को। "प्रभु, दनू काका को अच्छा कर दो। बुआ भी अच्छी तरह रहें और जिनके घर मैं गयी थी ब्याह कर वे मां-बेटे बिना किसी दोष के मारे गये, उन्हें शांति दो।"

प्रसाद लेकर तेपांतरी ने आंचल में बांध लिया, फिर मनसा के थान पर गयी। सेमल का पेड़ थोड़ा और बड़ा हो गया। होने दो, इसे और बड़ा होने दो। उसकी डालियां चारों तरफ फैल जायें तो पखेरू उनमें घोंसले बनायेंगे। पहले वाले सेमल के पेड़ से सभी रुई लेते थे। मां ने भी उसकी रुई से एक तकिया बनाया था। कितने दिन हो गये तेपांतरी को अपने

सिर के नीचे तकिया लगाये और माँ की देह पर सिर रखकर सोये ?

माँ का चेहरा भी अब साफ याद नहीं आता, धुंधला-धुंधला-सा दीखता है।

"अकेली बैठी क्या सोच रही हो ?"

"कौन ? कुशल ? तुम यहाँ ?"

"आते-जाते देवी को प्रणाम करता जाता हूँ।"

"कहाँ गये थे ?"

"अरे क्या बतायें ? टाउन गया था।"

"क्यों ?"

"आफिस में धरना देने।"

"किसलिए ?"

"सरकार तरह-तरह के काम कर रही है। मति बाबू के कहने पर हम आफिस गये थे। मति बाबू ने कहा था कि अगर हम परिवार-नियोजन का पट बनायें और दफ्तर में उसे पसंद किया जाय तो खरीद लिये जायेंगे। मैंने कहा—बाबू, आने-जाने में पाँच रुपये खर्च होंगे। इस तरह सिर्फ उम्मीद पर जाना हमारे लिए बड़ा मुश्किल है।"

"हाँ, यह तो है।"

"मैंने पूछा—बाबू, हमारी जाति का पुराना कारोबार जो खतम हो रहा है उसके बारे में सरकार कुछ नहीं करेगी ?"

"क्या कहा उन्होंने !"

"कहा अर्जी दो सरकार को।"

"दिया अर्जी।"

"एक। कितनी अर्जियों की नकल घर में पड़ी है। एक पूरी फाइल-सी हो रही है। अर्जी दिये बिना भी कुछ नहीं होता, अर्जी देने पर भी कुछ नहीं होता, कैसे होगा, कौन बताये ?"

"अब क्या करोगे ?"

"गाँव छोड़कर जाना होगा।"

"कहाँ जाओगे ?"

"बापू कह रहे थे—मयूरभंज चले जाना। वहाँ संक्राति से मेला शुरू

होता है और भादो के एक पखवारे तक चलता है।"

"वह जगह कहाँ है ?"

"यहाँ से बहुत दूर। वहाँ पर लोग पट भी देखते है, गाने भी सुनते है। कितने ही दल जाते है। साँपों की भी खूब खरीद-बिक्री होती है। पहले यहाँ भी तो वैसा ही मेला होता था।"

"सब कुछ बदल गया है, है न ?"

"स'''ब ! इस मनसा मेला में भी गाँव के दल को नहीं बुलाते हैं। और सब कुछ होता है। लाइट जलाते हैं, माइक लगाते हैं। हजार-हजार रुपये खर्च करके यात्रा के दल लाये जाते हैं, पर हम पटुओं को नही रहने देंगे।"

'अब तो कोई गाना सुनता ही नहीं।"

"ठीक कहती हो। पहले पटुए गाँव-गाँव में घूमते थे और गाना गाते थे। अब देखती हो कहीं ?"

"अब कहाँ दीखते हैं !"

अचानक दोनों की बातें खतम हो गयी।

थोड़ा हिचकिचाते हुए कुशल ने एक संक्षिप्त चुप्पी के बाद कहा—"तुम ऐसे बैठी थी, जैसे सती बेहुला बैठी विलाप कर रही हो।"

"कैसी बात करते हो।"

"क्यों ? क्या तुम बेहुला से कम सुंदर हो ?"

कुशल सहज आत्मीयता से कह गया।

तेपातरी मुस्करायी। फिर बोली—"आज पूजा देने आयी थी ! लो तुम भी प्रसाद ले लो।"

"दो।"

प्रसाद खाकर कुशल बोला—"इस बार मति बाबू से कहकर कुछ फैसला कराऊँगा।"

"किस बात का ?"

"घर बनाने के लिए जमीन और थोड़ी खेती वाली जमीन दिलाने के लिए। देखते-देखते सात साल हो गये। कितने ही लोगों को मिल गयी जमीन। बस, हम कुछ घर पटुए रह गये ? तुम कहो न उनसे एक बार।"

"कैसे कहूँ ?"

"वहाँ कैसी हो ?"

"जैसे जेल में हूँ। बहुत रोक-टोक है। मुझे एकदम अच्छा नहीं लगता।"

"एक ठिकाना तो है।"

"बिना खटे तो खिलाते नहीं हैं, इतनी खटनी करनी हो तो कहीं माहवारी पैसे लेकर भी···"

"नहीं, नहीं, बिना जाने-सुने···।"

"यही तो मुश्किल है।"

"मैं तुम्हारी बात भी सोचता हूँ। ऐसी लक्ष्मी जैसी लड़की की कितनी दुर्दशा हो रही है!"

"अच्छा कुशल! चलती हूँ।"

"अच्छा!"

शाम को चाय पीते-पीते एकाएक मति ने पूछा—"कुशल के साथ इतनी क्या बात हो रही थी?"

तैपांतरी अवाक् हो जाती है।

"जरूर ही कोई काम की बात हो रही थी।"

"मंदिर में बैठी थी, वहीं मुलाकात हुई।"

"कुशल अच्छा लड़का है, बहुत अच्छा। उसका बाप भी बहुत भला था।"

तैपांतरी अणिमा के पाँव में मालिश करती रही। कुछ बोली नहीं।

"पर बेचारा इन दिनों बड़ी मुसीबत में है। ओह! अगर आदमी के पास रहने को घर न हो, पेट में दाना न हो, तो क्या यह कम दुःख की बात है?"

अणिमा चिढ़ कर बोली—"तो तुम ही क्यों नहीं कुछ करते? कुशल पट्ठा तो कब से पीछे घूम रहा है?"

"लो सुनो! मैं क्या देश का मालिक हूँ?"

"कितनों को तो दिलवा दिया तुमने।"

"देखता हूँ, उनके लिए भी कुछ करूँगा।"

"अभी वे किसकी जमीन पर बसे हुए हैं ?"

"जयंत बाबू के।"

अचानक तेपांतरी ने पूछा—"दनु काका की कोई खबर मिली है। क्या ? आपने कहा था खबर लेकर बतायेंगे।"

"लो, यह बात तो भूल ही गया था मैं तुम से बताने को। दनू दादा पहले से अच्छे हैं। पर अभी वहीं रहेंगे।"

"आयेंगे भी किस लिए ? यहाँ है ही क्या ? भतीजे इतने अच्छे हैं," अणिमा ने कहा।

"दनू दादा अच्छे हो जायेंगे तो मानभजन जरूर आयेंगे। जन्मभूमि का आकर्षण भी तो कोई चीज है।"

तेपांतरी ने फिर प्रश्न किया—"आपने कहा था कोई काम सिखाने की व्यवस्था कर देंगे।"

"वह भी करूँगा। ऐसी-वैसी जगह तो तुम्हें भेजने से रहा।"

अणिमा के पाँव में मालिश खतम करके तेपांतरी ने अँगोछे से अच्छी तरह पोंछा और उठ खड़ी हुई।

"कहाँ जा रही है ?"

"रोटियाँ बना लूँ।"

तेपांतरी के चले जाने पर अणिमा ने कहा—"इसके आने से मुझे बड़ी सुविधा हुई। घर-द्वार भी चमक रहा है।"

"देखो कितने दिन टिकती है!"

"क्यों ?"

"चिड़िया उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही है।

"तुम ऐसे ही सोचते हो। पूजा चढ़ाने गयी थी, इसीलिए तो नहीं सोच रहे हो ? जवान लड़की है, उसका भी मन काम करते-करते घबडा जाता होगा। तुम हर बात में उस पर इतना बंधन लगाओगे तो कैसे चलेगा ?" तुम उसके साथ पिटिर-पिटिर मत किया करो। जो कहना होगा मैं कहूँगी।"

"तुम्हीं कहो।"

"उसे जेब-खर्च के लिए कुछ पैसे दिया करो।"

"अच्छी बात है।"

"बड़ी अभागिन है। देखने में कितनी सुंदर है। पान के पत्ते जैसा चेहरा, तीखी नाक, ठुड्डी में गड्ढा, जुड़ी हुई भौंहें, एकदम देवी जैसा रूप। स्वभाव भी अच्छा। कोई चीज पड़ी-पड़ी चाहे सड़ जाय पर हाथ से उठाकर न दो तो छूयेगी नही।"

"हाँ!"

मति एक गहरी सांस लिये बिना न रह सका। परिस्थितियों पर उसका वश नहीं है। दनू बाबू के लौट आने पर वह निश्चय ही उनके पास जाना चाहेगी।

उसके बाद ?

उसके बाद फिर अणिमा और बताशी के कंधों पर यह गृहस्थी लग-डाती चलेगी। ओह! कुछ साल पहले अगर शादी कर लेता! अब ऐसा करना संभव नहीं है। दुश्मन लोग इसी बात को लेकर ववंडर उठा देंगे। सब कुछ होते हुए भी जीवन कितना सूना है!

जवानी, जवानी ही सब कुछ है। अगर मति अपनी उम्र में से पचीस साल किसी तरह कम कर सकता तो क्या तेपांतरी इसी तरह उसकी उपेक्षा करती!

सचमुच, बहुत जमा कर चुका वह। ढेरों मिट्टी के तेल के टिन, ढेरों पाइप, हजारों मन गुड़ और धान, और हजारों मीटर कपड़े।

यह सब सिर्फ अणिमा के लिए था। अणिमा जितनी ही सूखती चली गयी, उतना ही मति की अवरुद्ध आकांक्षा दूसरी दिशाओं में प्रवाहित हुई। वह अपना प्रभाव बढ़ाने, अधिकाधिक धान का संचय करने और दीन-हीन लोगों को ठगने में लग गया। शराब और गांजे का ही तो नशा नही होता, इन सब चीजों का भी एक नशा होता है।

अब तेपांतरी को देखकर मति तरह-तरह की चिंताओं में पड़ा रहता है। खुद को चेतावनी देता है—चुप रहो मति।

कई दिन बाद अजामिल के प्रिय पुत्र और 'मानभंजन प्रगति क्लब' के मंत्री मोहन मंतो क्लब के किसी काम से मति के घर आये। तेपांतरी को वहां देखकर वह थोड़ा चौंके।

"भाभी, यह यहाँ है ?"

"तुम्हारे भैया लाये हैं।"

"भैया ?"

मोहन मंती उत्साही युवक हैं। फुटबाल खेलने झाड़ग्राम गये थे, वहाँ से कलकत्ता चले गये। कुछ दिनों से गाँव की खबर नहीं मिली थी उन्हें।

तेपांतरी की माँ की खबर वह जानता है, सभी जानते हैं। मति को इन युवकों की जरूरत पड़ती है, इसलिए वह इन्हें खुश रखता है। पर वे मति का विश्वास नहीं करते। जो अजामिल मति से अपने सब काम कराता है उसी ने उन युवकों से कहा है कि मति हवा का रुख देखकर काम करता है। उससे सावधान रहना चाहिए और यह भी याद रखना चाहिए कि उसके हाथों बहुत अन्याय हो रहा है।

मोहन अपने बाप की यह बात समझ नहीं पाता कि जो आदमी गाँव में तरह-तरह के अत्याचार कर रहा है उसी को उसके बाप ने इतना पावर क्यों दे रखा है और फिर उससे सावधान रहने को क्यों कह रहा है ? जो भी हो तेपांतरी को वहाँ देखकर मोहन बहुत चकित हुआ था।

"वह तो दनू बाबू के घर थी ?"

"हाँ।"

"उसका ब्याह भी हो गया था न ?"

"हाँ, वह सब बड़ी दुखदायी कहानी है।"

तेपांतरी के विवाहित जीवन के दुखता की चौंकाने वाली घटना को भरसक नाटकीयता के साथ अणिमा ने मोहन को सुनाया। मोहन बहुत दुखी हुआ।

"तो फिर यहाँ कैसे आयी ?"

"पोटोपाड़ा जा रही थी।"

मोहन ने कहा—"नहीं, नहीं। वहाँ जाने का क्या मतलब है ? उनका अपना ही पेट नहीं भरता; वे कैसे किसी और का पेट पाल सकते हैं ?"

"वह कोई काम सीखना चाहती है।"

"आप कहीं रखवा दीजिए न ?"

"मैं तो उसे पाकर बड़े सुख में हूँ। मेरे घर की कायापलट हो गयी

है। मगर मोहन, यह तो हुई अपने स्वार्थ की बात। मान लो, कल को मैं मर जाऊँ तो फिर उसका क्या होगा? नहीं, तुम उसके लिए कुछ करो। मुझे उस पर बड़ी दया आती है।"

"अच्छा, आप कहती हैं, तो देखूँगा क्या कर सकता हूँ।"

"अभी तो बड़ी ठंडी आवाज निकल रही है। कुछ दिन पहले तो तुम लोग बड़े ऊँचे स्वर में बोलते थे कि लड़कियों को काम सिखाओगे, उनके लिए क्या-क्या करोगे?"

"हम तो अभी भी चाहते हैं। मगर आप के स्वामी ही बीच में चीन की दीवार बने अड़े हैं। कोई काम किसी और के हाथ में जाने नहीं देते। सब कुछ खुद करना चाहते हैं।"

"वही तो मुश्किल है।"

"मगर तेपांतरी बहुत सुंदर कथरी सिलती है। अगर वह चाहे तो मैं आर्डर ला सकता हूँ।"

दरवाजे के पीछे खड़ी तेपांतरी ने कहा—"मैं खजूर के पत्ते की चटाई और आसन वगैरह भी बुन सकती हूँ।"

"कुछ व्यवस्था कर दो इसकी, बड़ा पुण्य होगा," अणिमा ने दयार्द्र कंठ से कहा।

मोहन वहाँ से अपने साथियों के बीच लौटा तो उसने कहा—"मति दादा तो बिना स्वार्थ के कुछ भी नहीं करते। उन्होंने तेपांतरी को अपने घर क्यों रखा है? यह भी समझ गया कि भाभी उसे खिसकाना चाहती हैं। पर बात ठीक से समझ में नहीं आ रही है।"

कई दिनों बाद मति ने अणिमा से कहा—"पता नहीं तुम्हें बुद्धि कब होगी?"

"अब नहीं होगी।"

"मोहन क्या व्यवस्था करेगा तेपांतरी की?"

"कथरी सिलने को देगा, चटाई बुनने को देगा।"

"उससे उसे क्या आमदनी होगी?"

"जो भी हो।"

"क्यों, क्या वह तुम्हारा बहुत खर्चा करा रही है?"

"अणिमा रहस्यमय ढंग से हँसी और बोली—

"तुमने क्यों कहा उससे। अब इसी बहाने वह आना-जाना करेगा··· जवान लड़की के साथ उनका मेल-जोल···"

स्त्रियों के सतीत्व को लेकर मति बहुत सजग रहता है। उसके घर मे एक अद्‌भुत व्यवस्था है। मजदूरो को चावल का मेहनताना मिलता है। वे वाहर पका कर खाते हैं। सभी लोग घर के अंदर घुसें, यह वात मति को पसद नही है।

"ठीक है, मैं मोहन से कह दूँगी कि तेपातरी जब तक यहाँ रहेगी, वे लोग अन्दर नही आयेंगे।"

"नही, नहीं, यह मैंने कब कहा, पर जवान लड़की है···।"

"तुम्हारे जैसे बूढे के मुँह से वह बात बार-बार सुनना अच्छा नही लग रहा है। तुमने क्या उसे खरीद लिया है?"

"क्या कह रही हो तुम?"

"सोचो, क्या कह रही हूँ। ज्यादा माया दिखाओगे तो उसे माँ के पास भेज दूँगी।"

"छोड़ो! जो तुम्हारी मर्जी हो करो।"

"इतना जाल फैलाने से मछली सावधान हो जाती है, समझे?"

पता नही क्या सोचकर अणिमा ऐसी बातें कर रही है? मति ने झट् से अपना स्वर बदल दिया।

"करने दो, जो करना चाहे करे।"

तेपांतरी आड़ में से सब सुन रही थी। उसके मन पर सदेह की छाया पड़ने लगी।

दूसरे दिन उसने अणिमा से कहा—"जरा घूमकर आती हूँ। जनाई मोड़ल को पता होगा दनू काका कब आयेंगे? मुझे कोई बता नही रहा है।"

"जा, अणिमा ने कहा।"

"आपको दनू काका का पता मालूम है?"

"नही रे, जानती तो मैं खुद चिट्ठी लिख देती।"

घर से निकल कर तेपांतरी दनू बाबू के घर नही गयी। सीधे मोहन

के घर पहुँची। ऐसे दुस्साहस के लिए उसे डर लगना चाहिए था, पर वह डरी नहीं।

"भैया, आपसे एक बात कहनी है।"

"कौन ? तेपांतरी तुम ?"

"हाँ।"

"बोलो, क्या बात है ?"

"सुना है कि ठीकेदार का आदमी मजदूर इकट्ठा करने आता है। इस बार आये तो मुझे बताइयेगा।"

"तुम काम करने बाहर जाओगी ?"

"और क्या करूँगी ?"

"क्यों ?"

"दनू काका होते तो भी एक बात थी।"

"पता नहीं कब आयेंगे।"

"अच्छे तो हैं ?"

"हाँ, अच्छे है।"

"भगवान को धन्यवाद। मैंने मंदिर में प्रार्थना की थी। दनू काका ने बहुत अच्छी तरह रखा था मुझे।"

"कथरी की सिलाई करोगी ?"

"हाँ, करूँगी।"

मोहन को लगा कि तेपांतरी कुछ और भी कहना चाहती थी, पर कह नहीं सकी।

मति को यह खबर भी यथासमय मिल गयी। मन-ही-मन वह तिल-मिला कर रह गया।

"उसे बाहर क्यों निकलने देती हो ?"

"काम काज खतम करके अगर वह बाहर निकलती है तो मेरा क्या लेती है ?"

"जवान लड़की···"

"इसी गाँव की लड़की है। हमेशा घूमती-फिरती रही है दनू बाबू के घर में। उसके ऊपर इतना चाँप नहीं था।"

"सुना है कोई काम पकड़कर यहाँ से जाना चाहती है।"

"अगर गयी तो तुम्हारे ही कारण जायेगी। अपनी कुरूपा, रोगिणी पत्नी की आँखों में कोई ऐसा भाव देखता है मति कि कुछ और कहने की हिम्मत नहीं होती।"

बहुत, बहुत दिनों बाद मानभजन में फिर पटुओं का गाना सुनायी पड़ा। तेपांतरी दौड़ी हुई अणिमा के पास आयी। बहुत ही विनय के साथ कहा—"दीदी, मनसा के थान पर गाना हो रहा है। आप जायेंगी ?"

"किसने बताया ?"

"बताशी ने।"

"तू जा।

मनसा के थान पर गाना हो रहा था। तीन-चार पटुओं को तेपांतरी नहीं पहचानती थी। कुशल, नबो और गुणमणि को पहचानती थी। ये सब अपने-अपने पट दिखाते हुए कैसे मन लगा कर गा रहे हैं। पर देख कौन रहा है ? कुछ लड़के-लड़कियाँ, क्लब के दो युवक और वंशीधारी मंदिर का पुरोहित, बस इतने ही लोग थे वहाँ।

तेपांतरी बहुत खुश हुई। कितने दिन हुए उसे पटुओं का गाना सुने हुए। पोटोपाड़ा की औरतें भी धीरे-धीरे इकट्ठा होने लगीं।

अछाड़ी पछाड़ी खाये बेहुला सुन्दरी।

माथा कूटी रोये कन्या मरा पति धरि॥

पोटोपाड़ा की औरतें एक दूसरे को देखकर हँस रही थीं। दर्शन हो, न हो, संक्रान्ति का मेला लगे, न लगे; मनसा थान पर पटुए गा तो रहे हैं। यह भी क्या कम आनन्द की बात है !

धूप में उनके पट झलमला रहे थे। बेहुला और लखीन्दर, नेता धोबिन और बेहुला, इन्द्र-सभा में बेहुला—इस तरह के कितने ही पट थे।

गाना गा कर उन्होंने जब पारी खतम की तो पैसे देने की बात आयी। पर तेपांतरी पैसे लेकर तो आयी नहीं थी।

मामी बुढ़िया सिर हिलाते-हिलाते बोली—"अरे कुशल ! मैं तो अचानक गाना सुनकर चौंक पड़ी।"

"क्या सोचा ?"

"सोचा बाबू लोगों का गाना सुनने को मन हुआ है।"

नहीं। ये तो मंदीग्राम के लोग हैं। थान पर प्रणाम करने और मेले की खबर लेने आये थे।"

"इसी से गाना शुरू कर दिया ?"

"हाँ, दादी।"

"ये मेले में आयेंगे ?"

"इस बार तय हो जाएगा।"

"ये कहाँ गये थे ?"

"बस, घूम रहे हैं।"

"कुछ हुआ ?"

आगंतुकों में से एक ने कहा—"नहीं, माँ, आजकल पटुओं को कोई नहीं चाहता। कहते है···"

"जानती हूँ, जानती हूँ। कहते हैं पर देखने से अच्छा है सिनेमा देखेंगे, पटुओं के गाने सुनने से तो अच्छा रेडियो सुनेंगे।"

"जी हाँ, वही बात।"

तेपांतरी के मुँह पर से खुशी गायब हो गयी। वह सभी की ओर बारी-बारी से ताकती रही। इन्होंने गाना गाया, पट दिखाया, पर किसे ?

कुशल ने कहा—"लगता है अब घर-द्वार छोड़ना पड़ेगा। ईंट-भट्ठा हो या कोई और जगह, काम ढूँढना होगा।"

"क्यों, सुना है ठीकेदार का आदमी मजूर ढूंढ़ने आया था।" तेपांतरी ने पूछा।

"हाँ, आया तो था कुछ दिन हुए।"

"फिर आये, तो मुझे बताना।"

"तुम मजदूरी करोगी ?"

"हाँ।"

तेपांतरी ने लौटकर अणिमा से कहा—"किसी ने कहा नहीं था। वे लोग अपने आप गा रहे थे।"

"अच्छा !"

"वे कहीं चले जायेंगे अब।"

"क्यों ?"

"यहाँ रोटी नही जुरती।"

"सच, आदमी को कितनी तकलीफ है।"

"तकलीफ तो आदमी को ही होती हैं।"

"तू कथरी सिल रही है न ?"

"हाँ, दो कथरियों का आर्डर है।"

"मेरे लिए एक बना दे। पैसे दूँगी। खूब बढ़िया बनाना।"

"मालीबेड़े में फूल-पत्ते वाली कथरी देखी थी।"

"मालीबेड़े !"

"हाँ।"

"तुझे अपने पति की याद आती है ?"

तेपांतरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ सोचने-सी लगी। फिर गहरी साँस भरकर बोली—"मेरी फूटी किस्मत !"

आजकल भी दुनिया में कुछ लोगों के दिन अच्छे हैं और ज्यादातर लोगों के बुरे। मानभंजन इस नियम का अपवाद नही है। मानभंजन में ऊपर से सब कुछ पहले जैसा रहता है, पर भीतर-भीतर कुछ टूट-फूट चलती रहती है।

मोहन के साथ मति का कुछ मतभेद हुआ, जिसका प्रत्यक्ष कारण तेपांतरी नही थी।

कुशल ने दूसरे पटुओ से कहा—"अर्जी देने से तो कुछ होता जाता नही। चलो, मोहन मंती से कहते हैं। बड़े बाप का इकलौता बेटा है और इतना टेढ़ा भी नही है। यह बात भी सच है कि बुरे वक्त में उससे मदद मिलती है। मन कहता है एक बार उससे कह देखो।"

"क्या कहोगे ?"

"वही जो अभी तक कहता आया हूँ।"

मोहन जो बात आज सुनता है उसे कल भूल जाता है। और अगर एक ही बात दस बार कही जाय तो हर बार वह बात उसे नयी लगती है।

पटुओं के टीप लगे और हस्ताक्षरित दर्खास्त को खूब मन लगाकर उसने पढ़ा, फिर बोला—"सिर्फ तेरह घर हैं ?"

"हाँ।"

"तेरह से एक भी ज्यादा नहीं है ?"

"तुम क्या गाँव में नये आये हो, बाबू," भामी बुढ़िया ने कहा—"हम लोग कितने घर हैं, यह भी नहीं जानते तुम ?"

"समझा, समझा ? हाँ, तो फिर···।"

"सब लिखा हुआ है अर्जी में।"

"मति बाबू को बताया था ?"

"उनके पास हमारी लिखी अर्जियों का पहाड़ बन गया है।"

"वह क्या कहते हैं ?"

"कुछ भी तो नहीं किया।"

"घर की जमीन का पट्टा चाहते हो न ?"

"जयंत बाबू ने रहने दिया, सो रह रहे हैं। खास जमीन भी तो है। उसमें से हमें नहीं मिल सकता ?"

"हाँ, मिल सकता है। क्यों नहीं ?"

"तुम करा दोगे, बाबू ?"

"निश्चय। यह तो मेरा कर्त्तव्य है।"

मोहन इस गाँव के सम्पन्न किसानों के युवा समाज का एकमात्र उच्चतर माध्यमिक फेल युवक है। वैसे उनके वर्ग में उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की कमी नहीं है। पर इस ग्राम में माध्यामिक परीक्षा से ऊपर कोई नहीं पहुँच सका है। आस-पास किसी कालेज का न होना भी इसका एक कारण है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा फेल मोहन ही अभी भी इस ग्राम का सबसे अधिक शिक्षित व्यक्ति है। स्वभाव की सरलता और मुर्दा फूँकने में खूब उत्साह दिखाने के कारण वह बहुत ही लोकप्रिय है। गाँव के बूढ़े बाहर जाते हैं तो मोहन उनके सगे-संबंधियों को कहना नहीं भूलता कि 'कोई ऐसी-वैसी बात हो तो समाचार जरूर दीजियेगा। जहाँ भी मरें, दाहकर्म में मैं जरूर शामिल होऊँगा।' पाकेट में पैसे हों तो खिलाने में कोताही नहीं करता, इस कारण मोहन अपने साथियों का भी प्रिय है। हालाँकि वह एक राजनीतिक दल में है, पर ऐसे कई काम कर जाता है, जिसका

उसके दल की राजनीति से कोई तालमेल नही होता। जैसे 'मानभंजन नाम रहस्य' नामक पुस्तिका की बिक्री वह बड़े उत्साह से करता है। और मनसा थान पर सक्रांति के मेले में उसकी भागदौड़ का कोई अंत नही होता।

पटुओं की अर्जी लेकर मोहन मति के पास गया। मति अपनी दुकान में बैठा था। दुकान पर नजर पड़ते ही मोहन अवाक् रह गया। उसके मुँह से आश्चर्य मिश्रित 'ओह!' निकल गया।

"क्या हुआ?"

"लगता है सारा माल घर पर ही रखते हो। दुकान तो एकदम खाली है।"

"तुम्हारी बुद्धि की बलिहारी है। दुकान को माल से भर दूँ, जिससे दोनों हाथ से लोग चोरी करें और डाका पड़े।"

"छोड़ो, अब काम की बात सुनो।"

"क्या, पटुओं की दरखास्त?"

"सब बातें कैसे जान जाते हो तुम?"

"मति सातरा की कई जोड़ा आंखें हैं।"

"फिर तो तुम जानते ही हो।"

"कौन गया था तुम्हारे पास? कुशल?"

"और लोग भी थे।"

"वे क्या चाहते है? घर के लिए जमीन? वे क्या घर मे नही रह रहे हैं?"

"पर उनके पास उस जमीन का पट्टा कहाँ है?"

"तो चाहते क्या है?"

"खास जमीन।"

"पर उसकी जरूरत क्या है? जहाँ बसे हैं वहाँ से उन्हे कौन उजाड़ रहा है?"

"खेती के लिए भी जमीन माँगते हैं।"

"पर वे तो पटुए हैं, किसान नही।"

"पट दिखाकर और गाना सुनाकर आज कल पेट नही भरता।"

"अच्छा, देखूँगा।"

"तुम चाहो तो यह काम तुरत हो जायेगा।"

"कर दूँगा इस बार। खेती की जमीन का वादा नही करता, पर घर की जमीन का पट्टा दिला दूँगा।"

"वादा?"

"हाँ, हाँ, कहा न।"

"वे कहते है मनसा मेला तो अब उनका मेला नही रहा। अब बाबू लोगो का मेला हो गया है।"

"यह तो कुशल कहता है।"

"पर यह बात झूठ तो नही।"

"क्या बात करते हो तुम?"

"हजार-हजार रुपये देकर अगर 'यात्रा' कराओगे तो लोग यात्रा ही देखेंगे। उनके गाने के दिन 'यात्रा' मत कराओ।"

"वाह! वे जो कहेंगे, वही करना होगा क्या हमे? इस बार बहुत प्रसिद्ध यात्रा दल ला रहा हूँ। ये क्या गायेंगे बेहुला का गीत? जानते हो 'यात्रा' मे कौन गायेंगी? अजना रानी जब बेहुला बनकर आती है तो आँखें चकाचौंध हो जाती हैं।"

"हाँ, यह तो है।"

"रुपये चाहिए, रुपये। पटुओ की काँव-काँव कितने दिनो तक सुनेगा आदमी? अब क्या उनकी बनाई हुई तस्वीरें किसी को अच्छी लगती हैं।"

"अच्छा, चलता हूँ," मोहन ने कहा।

कुशल ने मोहन की सारी बाते सुनी। सुनते-सुनते उसकी आँखे भोर के तारे की तरह एक साथ ही स्निग्ध और दृढ़ हो उठी।

फिर वह बोला—"एक कहानी सुनोगे?"

"कैसी कहानी?"

"कुछ दिन पहले पहाड़ पर गया था।"

"जानता हूँ, तवो ने बताया था।"

"बाबू के बनाये हुए चित्र भी साथ ले गया था। कोई बड़े अफसर थे। कह नही सकता कौन थे। पर उन्होने बड़ी आवभगत की मेरी।"

"आखिर थे कौन ? इतना भी पता नहीं लगा सके ?"

"वे बैठे थे, तभी हम चले आये। पर बात तो सुनो।"

"बोलो।"

"उन्होंने बापू के बनाये हुए पट देखे और बोले—'इनका बड़ा नाम है। एक समय अखबारों में इनके बारे में बहुत कुछ पढ़ा था।···' मुझे भी पता था, पर उन कागजों मे कबके दीमक लग गये।"

"सँभाल कर नहीं रखा था ?"

"हमारे घर में कभी गये हो ? आकर बताना, कहाँ सँभालकर रखता।"

"फिर ?"

"बोले—'ठीक से प्रचार हो तो ये चित्र काफी पैसों में बिक सकता हैं।' हमने गाना गाया, तो उन्होंने टेप कर लिया।"

"यह तो अच्छी बात है।"

"यह बात नही है। यह तो इसलिए कहा कि जो मति बाबू कहते हैं कि आजकल कोई पट नही देखता, कोई गाना नही सुनना चाहता, उस पर कही ये बातें।"

"देखो कुशल। यह सब जिसे 'आर्ट' कहते हैं शहर के लोग ज्यादा समझते हैं। गाँव के लोग···।"

"मोहन ने ये बातें बहुत अपनेपन से कही। वह समझ रहा था कि कुशल किसी गहरे दुःख और बाहरी हताशा से जूझ रहा है। उसकी दुनिया जैसे लुटी जा रही थी। पर 'क्यों' हो रहा है यह सब, यह बात मोहन नही समझ पा रहा था।

"पर मोहन बाबू, पट तो गाँव में ही बनते थे और गाँव के लोग ही उन्हें देखते थे ?"

"वह गाँव अब कहाँ है ?"

"हाँ, गाँव बदल गये हैं। पर हम तो वैसे ही रह गये, यही सोच रहा हूँ। और कुछ जानता नहीं, और कुछ कर नही सकता। पर कोई देखेगा नही, गाना सुनेगा नहीं। हम मूर्ति बनाते हैं, वह भी तुम लोग शहर से गढ़वाकर ला रहे हो।"

"हां, निश्चय ही यह बहुत चिंता की बात है।"

"मति बाबू ने सोचा हम नाराज हैं, हमारा दुःख नहीं देखा। मनसा मेला में, यहीं तेरह घर पटुए सारी रात पट दिखाते और गाना गाते थे, बीस-बीस हंडे जलते थे।"

"सवेरे से शाम तक अभी भी गा सकते हो।"

"रात में अगर 'यात्रा' होगी तो लोग रात में ही आयेंगे। और 'यात्रा' भी कैसी? शहर की। गांव के जो लोग मनसा जागरण गाते थे वे कहाँ जायेंगे?"

"मति दादा से कहूँगा।"

"खैर, छोड़िए। जो होना होगा, होगा। घर की जमीन का पट्टा दिलायेंगे वह भी अच्छा है। मगर एक बात कहूँगा, सभी को पट्टा मिलना चाहिए। हम सभी जयंत बाबू को लगान देते हैं।"

"लगता है तुम कहीं जा रहे हो?"

"मनसा थान पर प्रणाम करके विदा हो रहा हूँ। जाजोन में पोखर की कटाई हो रही है। देखूंगा कहीं और काम मिल जाय तो कर लूंगा। भूखों मरने से तो यही अच्छा है, पर माँ मनसा की इच्छा होगी तो संक्रांति के पहले ही लौट आऊँगा।"

इसके बाद नवो, गुणमणि, और कुछ दूसरे पटुओं के साथ कुशल चला गया।

भामी बुढ़िया ने कहा—"हो गयी छुट्टी। अब हम औरतें घर मूंदकर बैठी रहेंगी।"

तेपांतरी के साथ कुशल की मुलाकात नहीं हो सकी। अचानक खबर आयी थी और उसे जाना पड़ा। एक किलो चावल और तीन रुपये दिन-भर खटने के बाद मिलेंगे। चलो, यही सही। ग्राम-कमेटी पोखरे का उद्धार करा रही थी। उम्मीद थी कि मजूरी समय से मिल जायेगी। नवो का जीजा जाजोन में रहता है, वही खबर लाया था।

"कुशल, चलो न! जो मिलता है वही सही। कम से कम पेट तो भरेगा। यहाँ तो भूखों मरना है।"

"चलूंगा।"

"एक हिसाब से तू अच्छा है कि तूने ब्याह नही किया। काका तेरे पांव में बेड़ी देकर नहीं गये।"

"ज्ञानी आदमी थे।"

"जो भी हो, तूने बहुत सेवा की उनकी। मैं तो कहूँगा तेरी जगह कोई लड़की होती तो भी इतना नही कर सकती थी।"

"बापू न होते तो मेरे लिए जिंदा रहना भी मुश्किल था।"

"जो भी हो। घर में अकेला रहता है, हम लोगों की तरह बेचा-बेचा चारों ओर नहीं फिरते।"

"कैसी बात करता है नबो! घर लौटने पर तेरे लिए दरवाजा खोलने वाला तो है कोई? मेरा कौन है?"

"मैं यदि तेरी तरह होता!"

"तो क्या करता?"

"शहर चला जाता।"

"नहीं, शहर जाना ठीक नही है। शहरने आकर गाँव को निगल लिया है। गांव मरता जा रहा है, फिर भी तू शहर जाने की बात करता है। शहर में जितनी बेईमानी और धंधेबाजी है उतनी और कहीं नही है। शहर के बाबू लोगो ने मेरे बापू को लेकर कितना नाच नाचा। अखबार में कितना कुछ लिखा उनके बारे में और वही नमी चित्रकार गाँव में बिना दवा-दारू, बिना रोटी के मर गया।"

तेपातरी के साथ कुशल की मुलाकात नहीं हुई। पर उसका गाना सुनकर दौड़ती आती तेपांतरी की आकृति उसे बार-बार याद आती थी। उसका मुख खुशी से कैसा चमक रहा था! ठीक वैसा ही मुख जैसा वे पट पर आँकते है। सैकड़ो वर्षों से जैसे वे तेपांतरी का ही मुख आँकते आ रहे हैं। जैसे नमी चित्रकार का कोई पट अचानक जिंदा हो उठा हो।

रंग जरा दबा हुआ है उसका, वह तो होगा ही। गांव की औरत के शरीर का रंग गर्मी-वर्षा में जलकर, भीगकर हल्का पड़ जाता है। तेपातरी का दौड़कर आना, मुँह पर हँसी और आशा लिये उसकी तरफ देखना, तेज-तेज साँस लेने से फूलती हुई छाती, पीले रंग के आँचल से माथे का पसीना पोछना—ऐसे कई चित्र अपने मन के पट पर अंकित करता कुशल

चित्रकार जाजोन चला गया।

जाजोन का गाजन मेला, मानभजन का मनसा मेला और गांगनापुर का उतरौनी मेला—सब अपना माहात्म्य खो चुके हैं। सब जगह माइक पर 'दमादम मस्त कलंदर' और 'आजा मेरी बरबाद मुहब्बत के सहारे' और तंबू में 'महाबली हनुमान' या 'शोले' का 'ढिशुम् ढिशुम्' चलता रहता है या फिर कलकत्ते के किसी ऊँची किसिम की बाईजी की 'यात्रा' और शराब का ठेका, जहाँ गाँव के लफंगों का हुर्रा-हुर्रं होता रहता है।

इन लोगों के चले जाने की खबर तेपांतरी को मामी बुढ़िया के द्वारा मिली। अणिमा हर तिमाही पर लक्ष्मी-गणेश की पूजा करती है। इस तरह की घरेलू मूर्तियाँ और पुतले पोटोपाड़ा की औरतें बनाती हैं। माँगने पर रंग करके दे देती हैं। मिट्टी के घोड़ों की मानता करने का रिवाज अब कम हो चला है। गाँव की लड़कियाँ भी अब मिट्टी की बनी हांडी-कूंडा, सिल-बट्टा लेकर नहीं खेलतीं। ये चीजें भी अब प्लास्टिक और अलमुनियम से बनने लगी हैं। पहले गाँव के लोग लड़की की विदाई के समय साथ में गुड़िया सजाकर भेजते थे। उन गुड़ियों की शोभा ही निराली थी। अब कोई नहीं देता।

इसी तरह की बातें करती हुई मामी बुढ़िया काफी देर तक बैठी रही। फिर तेपांतरी ने अणिमा के लिए लक्ष्मी-गणेश की मूर्ति बनाने की बात कही।

"बना दूँगी, ले जाना।"

"बड़ा सुनसान-सा लग रहा है?"

"लगेगा ही, लड़के लोग तो हैं नहीं।"

"कहाँ गये हैं?"

"जाजोन काम करने गये हैं।"

"सभी चले गये?"

"सबसे पहले ननी का बेटा कुशल, हमारा नबो और उस घर का गुणमणि गये। उसके बाद दूसरे छोकड़े। छप्पर में घरसोना साँप जैसे चुपचाप पड़ा रहता है उसी तरह हम भी पड़े रहते हैं, समझी? जरा धागा तो सुई में पिरो दो, अब सूझता नहीं मुझे।···फिर अपनी पतोहू को पुकार

कर बोली—नरम धूप में पटों को निकालना होता है, इतना भी नहीं जानती ? ···फिर बुढ़िया तेपातरी की ओर घूमी—सुन छोकड़ी ! अपनी मालकिन को कहना एक-दो पुरानी धोतियां देने को।"

"कहूंगी।"

तेपातरी का मन उदास हो गया। उसका कलेजा फटने लगा।

"वे लोग अब वापस नहीं आयेंगे ?"

"सक्रांति में तो आना ही होगा।"

"क्या सभी जगह ऐसा नियम है ?"

"ना रे ना ! सिर्फ इस इलाके में।"

"मैंने सोचा सभी जगह ऐसा नियम होगा।"

"ऐसा क्यों होगा ? माँ मनसा चाँद सौदागर की पूजा स्वीकार करके जब इस राह से जा रही थी, तो उन्होंने पटुओं से कहा—'सिर्फ दूसरे देवताओं का गाना गाते रहोगे, मेरा कीर्तन भी गाना होगा।' "

"बहुत पहले, है न ?"

"हाँ, बहुत पहले। तो माँ उन्हें रास्ता दिखाती ले आ रही थी कि भोर हो गई और वे इस सेमल के पेड़ में अदृश्य हो गयीं। तब ननी के एक पुरखे ने कहा—भाइयो, यह एक लक्षण है।"

"फिर क्या हुआ ?"

"पेड़ की जड़ में सभी ने दूध चढाया और प्रार्थना की तभी से··· अच्छा सुन छोकड़ी, जल्दी से ले जा।"

"अच्छा।"

तेपातरी बहुत ही विवश और विपन्न अनुभव करती है। अपने गाँव में पेट न भरने से अपना पुश्तैनी धंधा छोड़कर चला गया कुशल, जो अभी कल तक यहाँ रहता था। आते-जाते मुलाकात होती थी। उस दिन कितने प्रेम से हाथ पसारकर देवी का प्रसाद लिया था। कुशल न नाटा है, न लंबा। नाक चिपटी है, पर आँखें बेहद सुंदर हैं। सिर के बाल छोटे-छोटे हैं, पर अभी से उड़ रहे हैं। तेल न पड़ने से भूरे-भूरे हो रहे हैं।

मति सांतरा सब-कुछ देख रहा था। तेपातरी की उदासी और विषाद देख रहा था। इससे मन-ही-मन वह जला-फुंका जा रहा था। यह यौवन

के लिए यौवन का आकर्षण था। कुशल युवक है और तेपातरी युवती। कुशल और तेपातरी के बीच निश्चय ही आकर्षण उत्पन्न हुआ होगा। तभी तो वह इतनी उदास है।

अणिमा से उसने यह बात कही तो उसने बड़ा तीखा जवाब दिया। उसने जो कहा वह बहुत अप्रिय था, बहुत सत्य। कोई कटु सत्य सामने आता था तो पहले स्वामी-स्त्री उसे लेकर एक चुप्पी साधे रहते थे।

उसे लेकर कोई बातचीत उनके बीच नहीं होती थी। जो कुछ कहना होता मति कहता। अणिमा संक्षिप्त-सा 'हाँ' कर देती।

अणिमा का दिल भी तेजी से टूट रहा था है। पेट में अल्सर है। ऊपर से श्वास-कष्ट। और फिर दाल-तेल-जमीन-दुकान के इस साम्राज्य का भोग करने वाला कोई नहीं। उसकी बहिन के लड़के को मति ने गोद नहीं ही लिया। न ले। उसका बाप कोई भिखारी नहीं है। 'मौसी', 'मौसी' करके बुलाता है, इसीलिए उसके प्रति मन थोड़ा खिंच गया था।

अपने भाई के लड़के को भी गोद नहीं लिया। पहले से ही उनके बच्चे को गोद ले लेते तो संबंध अच्छा बना रहता। अंततः मिलेगा सब-कुछ तो उन्हीं को।

तेपातरी पर मति का अत्यधिक अधिकार-बोध भी अणिमा को अच्छा नहीं लगा था। पर क्या करे अणिमा? तेपांतरी को कहाँ भेजे? दनू दादा भी आ जाते तो एक रास्ता निकलता। दीदी की भी बलिहारी है। जब तक गाँव में थी, अपना घर कैसा साफ-सुथरा बना रखा था। आँगन में घास तक नहीं उग सकती थी। और अब उन्हें इधर ताकने की भी फुर्सत नहीं। आज जगन्नाथ धाम, तो कल कहीं और। जनाई मोड़ल के हाथ सब-कुछ सौंपकर कैसी निश्चिंत हो रही हैं।

पेट में गैस बनती है। गैस से श्वास-कष्ट बढ़ता है। मति की बात सुनकर अणिमा खीखिया उठी—क्या? तेपांतरी कुशल से प्रेम कर रही है? कब किया यह सब? दिन भर यहाँ खटती रहती है। उसे मौका कब मिला इतना मेल-जोल बढ़ाने का?

"ओहो! मैं कह रहा था…"

"कर रही है तो करने दो, तुम्हारा क्या जाता है? मैंने इसीलिए बहुत

पहले तुम से कहा था, ब्याह करें लो।"

"चुप कर औरत !"

"क्या मारोगे ? मारो न, मारो। पहले भी क्या कम मारा है ! मुझे मार डालो फिर जो चाहो करो । ओह ! इस लड़की का भी क्या भाग्य है ! वह तो अपने आप तुम्हारे पास आयी नहीं। जहां मर्जी जाती । तुम्हें क्या पड़ी थी झट से अपने घर ले आये ? आज अगर उसकी जमीन होती तो वह इस तरह लावारिश क्यों हो जाती ?"

ये बातें अणिमा ने पहले कभी नही कही थी। मति डर गया। उसने तुरत आवाज नरम करके कहा—रहने दो, माफ करो।

अणिमा ने रुंधे हुए गले से कहा—जब तुम उसे यहाँ लाये थे तभी मुझे सावधान हो जाना चाहिए था। तुम क्या दनू दादा हो कि किसी का निस्वार्थ उपकार करोगे ?

अणिमा में एक नया परिवर्तन आया था। वह दनू बाबू की प्रशंसा कर रही थी। दनू बाबू, जो अलग राजीतिक पारटी में हैं। शत्रु की प्रशसा अणिमा जैसी औरत के अलावा कौन करेगा !

अणिमा ने करवट ली और हांफने लगी। तेपांतरी ने आकर उसे पानी पिलाया। फिर उसकी छाती की मालिश करने लगी। फकीर-साधू, पडित-पुरोहित वगैरह द्वारा दी गयी तरह-तरह की अँगूठियो से लदी अँगुलियों वाले कंकाल जैसे हाथों से अणिमा ने तेपातरी का हाथ पकड लिया और उसकी आँखो के कोनों से पानी निकलने लगा।

अणिमा की आँखों में आँसू केवल रोग के कष्ट के कारण नही था। अणिमा को तेपांतरी का कोई दोष दिखाई नही पड़ रहा। तेपांतरी के लिए उसका मन बहुत व्याकुल, बहुत कातर हो रहा था। पहले ऐसा नही था। सिर्फ उसके काम-काज से खुश थी, पर पता नही कब अनायास तेपातरी ने अणिमा के मन में जगह बना ली। रोगी की जैसी सेवा तेपातरी के हाथों अणिमा को मिली, वैसी सेवा उसे पहले कभी नही मिली थी।

"तेपांतरी !"

"जी।"

"मैं जितने दिन जिंदा हूँ, मुझे छोड़कर मत जाना।"

"नहीं जाऊँगी। अब आप चुप रहिए।"

"मैं आँख मूंद लूं, तो एक मिनट भी मत रुकना। जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चली जाना।"

"अब बात मत करो। तकिया जरा नीचे कर देती हूँ। गरम पानी करके लाती हूँ। सेक कर लो।"

"रात में बहुत कष्ट होता है।"

"एक बार कलकत्ता क्यों नही जाती ? बड़े हस्पताल में दिखाने से शायद आराम होता।"

"जाऊँगी।'''एक काम कर। तू मेरे कमरे में सोया कर। रात में बहुत कष्ट पाती हूँ।"

"आप के कमरे में ?"

"हाँ। मैं अलग कमरा ले लूँगी।"

इसके बाद सोने की नयी व्यवस्था हुई। अलग कमरे मे तख्त पर अणिमा और जमीन पर तेपांतरी सोने लगी। मति ने कुछ भी नही कहा। रातका खाना खाकर वह अपने कमरे में लालटेन जलाकर कागज-पत्र देखने लगता।

अणिमा निश्चित हुई। उसने सोचा था कि इस नयी व्यवस्था से मति बहुत नाराज होगा। पता नही किन कामों मे मति कई दिनों तक बहुत व्यस्त रहा। बाहर भी गया। एक दिन आकर अणिमा से बड़े उत्साह के साथ उसने कहा—"तुमने हमेशा मुझे बुरा समझा और मैं हमेशा जनता की भलाई में लगा रहा।"

कड़वी दवा खाने से आदमी का मुँह जैसा हो जाता है वैसा ही मुँह बनाकर अणिमा ने पूछा—"इस बार किसका उद्धार किया है ?"

"पट्ठुओं का जी, पट्ठुओं का।"

"क्या उपकार किया उनका ?"

"सभी को घर की जमीन दिलवा दी। पट्टा मिलने मे थोडी देर जरूर होगी पर काम पक्का करके आया हूँ। ओह ! कोई अच्छा काम करके लगता है छाती एक इंच ज्यादा चौड़ी हो गयी है। अरे तेपांतरी ! एक प्याला चाय बना दे मेरे लिए।"

तेपांतरी सचमुच खुश हुई। यह काम तो वाकई इस आदमी ने अच्छा ही किया। अब कुशल गाँव छोड़कर नहीं जायेगा।"

"साथ ही 'यात्रा' का बयाना भी दे आया हूँ। इस बार सती बेहुला का नाटक जो देखेगा देखता ही रह जायेगा। चाँद सौदागर का जहाज समुद्र में तूफान के झोंके खाता हुआ लाइट से दिखाया जायेगा, स्वर्ग का दृश्य दिखाया जायेगा।"

"कब होगी 'यात्रा' !"

"'यात्रा' तो रात में ही जमती है। दिन में पटुओं का गाना होगा। शहर से भी लोग आयेंगे। अजामिल बाबू चाहे तो सरकारी आदमी आकर मेले का सिनेमा भी बना लेगा। जिसे कहते हैं डॉकूमेंटरी।"

इस समाचार से सभी लोग बहुत खुश हुए। एक दिन तेपांतरी जाकर भामी बुढिया से यह सब बता आयी। भामी बुढिया ने कहा—"देख छोकड़ी, मति बाबू तो हमेशा दूसरे की मुर्गी का अंडा खाते है, पर जो भी हो यह काम तो अच्छा ही हुआ। लड़के आयेंगे तो कहूँगी मति बाबू के नाम पर एक पट बना देंगे। किसी ने इस बार कुछ किया ही नहीं। संक्रांति भी पास आती जा रही है। वृष्टि भी कभी आती है, कभी नहीं आती। इस बार भी कोई भरोसा नहीं है। यह दूसरे साल लगातार सूखा पड़ेगा। भगवान की भी मति निराली है। जहाँ जरूरत नहीं वहाँ पानी ढाल रहा है, जहाँ जरूरत है वहाँ सूखा पड़ रहा है।"

एक दिन उपवास करते हुए अणिमा की तबियत बहुत खराब हो गयी। कै होने लगी काली-काली। उसके बाद अणिमा बेहोश हो गयी। जाजोन स्वास्थ्य-केंद्र के डाक्टर को साइकिल पर बैठा के मोहन ले आया।

"इन्हें शहर के बड़े अस्पताल में दाखिल कराना होगा।"

"जाजोन में नहीं होगा ?"

"वहाँ कुछ भी नहीं है।" डाक्टर ने चिढ़कर कहा।

बड़ी मुश्किल से अणिमा को शहर ले जाया गया। तेपांतरी और बताशी खूब रोयी। मोहन ने धमकाया—"रो क्यों रही हो ? इन्हें क्या मारने ले जा रहे हैं ? दादा, यह अंगूठी-फंगूठी सब खोलकर रख लो।"

अभी तक जो भी गंडा-तावीज, अंगूठी, कंगन-हार आदि अणिमा के

ककाल को ढके हुए थे उन्हें उतारकर और गिन-गोथ कर मति ने संदूक के हवाले किया।

चार-पाँच दिन बाद मति शहर से वापस आया।

"बहूरानी कैसी हैं?" बताशी ने पूछा।

"खून चढाना पड़ा। बच तो जायेगी, पर बहुत दिनों तक हस्पताल में रहना होगा। मैं नहाने जा रहा हूँ। मेरे लिए थोड़ा-सा भात पका दो।"

तेपांतरी के मन में मति के लिए जो अनिश्चित-सा भय था, वह अब अणिमा की बीमारी के दुख के नीचे दब गया था। थाली परोसकर मति के सामने रखते हुए तेपांतरी ने कहा—"भाभी जरूर अच्छी हो जायेंगी, मेरा मन कह रहा है।"

"अगर डाक्टर के कहने में चलेगी और जीभ नहीं चलायेगी तो। क्या-क्या अंट-शट खाती रहती थी, इसीलिए तो कभी अच्छी नही रही। मैंने दवा कराने मे कोई कोताही नही की।"

बताशी उस घर मे बहुत दिनों से है। वह बोल पड़ी—"बहू रानी अभी ऐसी हो गयी हैं, पहले तो उनका दिव्य शरीर था। एक थाली भर मुरमुरे हम लहसुन-मिर्च के साथ खा जाते थे। पर कुछ सालो से बाल-बच्चे के लिए उन्होने जो व्रत-उपवास शुरू किया तो उनका शरीर टूटता ही चला गया।"

मति सो गया तो तेपांतरी भी अपने कमरे में सांकल चढ़ाकर सो गयी। कई दिनो से अणिमा की चिंता में ठीक से सो नहीं पायी थी वह। आज समाचार मिल गया तो थोड़ा ढाढ़स बँधा और अघोर नीद मे डूब गयी बिस्तर पर लेटते ही।

"तेपांतरी! तेपांतरी।"

नीद की गहराई से चेतना की सतह पर आने में तेपांतरी को थोड़ा वक्त लगा।

"कौन?"

कोई उत्तर नहीं आया।

"कौन?"

"मैं हूँ। मैं।"

मति बाबू ? तो क्या मामी की कोई खबर आयी इतनी रात को ? निश्चय ही यही होगा। और कोई बात तेपांतरी के दिमाग में आयी ही नहीं। उठी और दरवाजा खोल दिया।

मति झट् से कमरे में घुस आया। दरवाजा बंद करने लगा। पलक भाँजते तेपांतरी सब कुछ समझ गयी और दूसरे ही पल सतर्क हो गयी। उसके कमरे में बेलना पड़ा था। उसने तुरत बेलना हाथ में उठा लिया।

"तेपांतरी !"

"निकल यहाँ से।"

"तेपांतरी।"

"बेलने से सिर फोड़ दूँगी। बूढ़ा, खूसट कहीं का।"

बूढ़ा ! उसे तेपांतरी ने बूढ़ा कहा ! मति कहना चाहता था वह बूढ़ा नहीं है। पर छोकरी चीख पड़ी तो ! गाँव में बड़ी बदनामी होगी।

"दरवाजा बंद कर ले। मैं जा रहा हूँ।"

चोर की तरह मति बाहर निकल गया। तेपांतरी ने दरवाजा बंद कर लिया। अणिमा ने बहुत पहले ही समझ लिया था इस आदमी के इरादे को।

सवेरे चाय पीते हुए मति ने फुसफुसाकर कहा—"जो हो गया, हो गया। यह बात किसी से कहना मत।"

तेपांतरी ने मति की ओर निडर आँखों से देखा। अत्यंत काला और प्रौढ़ चेहरा जैसे कोई पुराना छितहन का पेड़। बाल प्रायः सभी पके हुए। तीखी और तेजी से इधर-उधर घूमती पुतलियाँ। तेपांतरी की आँख से आँख नहीं मिला सका मति।

दो-तीन दिन तक मति ने अपना वचन रखा। उसके बाद एक शाम जब तेपांतरी रसोईघर में थी तो किसी की छाया देखकर चौंक उठी। दरवाजे पर मति खड़ा था।

तेपांतरी सीधी नजरों से उसे देखती रही।

"सुनो तेपांतरी, तुम जो सोच रही हो वह बात नहीं है। मैं···मैं तुम से ब्याह करूँगा।"

"ब्याह ? आप ?"

"हाँ, तेपांतरी, तुम्हारी जमीन, साथ में कुछ और जमीन तुम्हारे नाम कर दूँगा तुम्ही सोचो अणिमा की देह में अब क्या रह गया है? तुम्हारा भी गुजर-बसर हो जायेगा।"

तेपांतरी की आँखें क्रोध से लाल हो उठी। बोली—"मेरा तो गुजर-बसर हो जायेगा और आपका क्या होगा?"

"मैं तुम्हारा गुलाम होकर रहूँगा। तुम जो सोच रही हो कि पोटोपाड़ा का कुशल तुम्हें आकर ले जायेगा, वह नहीं होगा, वह मैं नहीं होने दूँगा।"

"पोटोपाड़ा का कुशल?"

अब तेपांतरी ने समझा कि मति का दिमाग किस ओर घूम रहा है। वह बोली—"आप तुरत यहाँ से हट जाइये, वरना मैं अनर्थ कर दूँगी। शाम के समय ''पास के कमरे में बताशी'''आप कर क्या रहे हैं?"

"मगर मैं रात को आऊँगा।"

रात में तेपांतरी ने बताशी को अपने कमरे में बुला लिया, तकिये के नीचे कटारी रख ली फिर भी मन ने कहा—'इस तरह कितने दिन बचोगी, कितने दिन?'

दूसरे दिन से मति को एक और काम में व्यस्त हो जाना पड़ा, बुरी तरह व्यस्त। मनसा मेला की कमेटी बुलाकर मेले की व्यवस्था करनी थी। सक्रांति में अब दिन ही कितने रह गये हैं! मेला अगर अच्छी तरह हो जाय तो हो सकता है बारिश हो। अब तो मनसा देवी किसी के ऊपर कृपा भी नहीं करती।

पहले जिसके सिर देवी आती थी वह कितने ही प्रश्नों का जवाब दे देता था। ऐसे ही एक मेले में एक बार एक छोटे बच्चे पर माँ की सवारी आयी थी। उसने जमींदार के चोरी गये बर्तन जिसके पास थे, उसका नाम बता दिया था।

आजकल पट्टए बाहर-बाहर फिर रहे है। कोई-कोई लौट भी रहे हैं। बाहर रोज मजूरी मिलती थी यह भी नहीं, फिर भी कुछ पैसे और खुराकी से बचाये गये कुछ चावल लेकर वे लौटे है। अब तो अपने गाँव में ही काम मिलेगा। मकान की जमीन का पट्टा मिलेगा। यह बात सुनकर

उनके सूखे दिलों में खून का ज्वार उठ रहा है। मति बाबू बड़े अच्छे हैं। इतने दिनों पर पर पाँव रखने को जमीन तो मिली। चलो भाई, अपने-अपने घर चलो। अपने पट निकालो, पुराने पटों को नया रंग-रोगन लगाकर ताजा करो। मेले के समय दिखाना होगा, पुराना नियम है। लड़कियाँ मनसाघट पर चित्रकारी कर रही है। अभी भी इस घट की सहजन की डाल के साथ पूजा होती है।

मोहन और कई दूसरे लोग मति के कमरे में इकट्ठा थे। आगामी उत्सव की बातचीत अब अपने चरम पर थी। अजामिल बाबू का मकान चाहिए वरना 'यात्रा पारटी' कहाँ टिकेगी! इसी बीच कुशल चित्रकार आ खड़ा हुआ। मति का चेहरा गंभीर हो गया।

"क्या बात है कुशल ?"

"प्रणाम करता हूँ, बाबू !"

"प्रणाम। देखते नहीं, इस समय कितना व्यस्त हूँ।"

"हमारे रिहाइशी जमीन के पट्टे कब मिलेंगे, बाबू ?"

"तुम्हें नहीं मिलेंगे, दूसरों को मिलेंगे।"

"यह क्या, बाबू !"

"मति दादा, यह कैसी बात है ?" मोहन भी बोल पड़ा।

"कुशल का नाम लिस्ट में नहीं आया।"

"तुम जो नाम दोगे वही लिस्ट में आयेंगे ?"

"हमेशा क्या एक ही नियम चलता है ? इसका नहीं हुआ, औरों का हुआ है।"

"मेरा क्यों नहीं हुआ, बाबू ?"

"देखो…"

मति ने अनाप-शनाप बकना शुरू किया। कुशल अकेला होता तो शायद वह उसका जवाब देने की भी जरूरत नहीं समझता, पर यहाँ और भी लोग थे, इसलिए कुछ कहना जरूरी था।

"बोलो बाबू, सुन रहा हूँ।"

"दर्खास्त देने से ही थोड़ा ही हो जाता है। जिलाधिकारी के यहाँ, पंचायत के दफ्तर, ब्लाक के दफ्तर कई जगह जाँच-पड़ताल होती है।"

"सब कुछ था। दर्खास्त तो एक बार नहीं पड़ी। बार-बार पड़ी है। हर बार पंचायत ने सिफारिश की, ब्लाक ने सिफारिश की, आपने कहा था जिला परिषद् में जाकर काम करायेंगे, फिर भी पहले नहीं हुआ। इस बार हुआ भी तो मेरा नाम क्यों नहीं है?"

"शायद आखीर में तुम्हारा नाम था, कट गया होगा।"

"इसका नाम बीच में था, नवें नंबर पर। मैंने लिखा था सबका नाम," मोहन ने कहा।

"अब जो होना था, हो गया। बाद में देखूंगा।"

कुशल भौंहें सिकोड़े दो पल सोचता रहा, फिर बोला—"बाबू, आपने कैसे सोच लिया कि मुझे घर की जमीन नहीं चाहिए?"

"मति दादा! सचमुच आपने भी कमाल कर दिया। जरा यह सोचा होता कि कुशल किसका बेटा है!" मोहन ने कहा।

यौवन, यौवन, कुशल जैसे मूर्तिमान यौवन है। जैसे पट में लखींदर दिखाई पड़ता है, ठीक वैसा ही।

मति क्रोध में पागल होकर चीख उठा—"मोहन, तुम लोग किसकी बात कर रहे हो? जानते हो इस आदमी ने क्या किया है?"

"क्या किया है?"

"क्या किया है मैंने?"

"नाटा सरदार की लड़की को बहका रहा था।"

"नहीं, कभी नहीं। यह झूठ है।"

"मैं कह रहा हूं, यह सच है।"

किवाड़ की आड़ से तेज आवाज आयी—मोहन भैया, यह सब झूठ है। निखालिस झूठ। यह आवाज तेपांतरी की थी।

सभी चौंक पड़े। मति ने हाथ का कागज-पत्र फेंक दिया और उठ खड़ा हुआ। तेपांतरी ने धड़ाम से दरवाजा बंद कर लिया। सभी एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

कुशल ने कहा—"बाबू इनकी कोई गलती नहीं है। उन्हें कुछ मत कहिएगा। पर, एक बात कहूंगा, मुझे गांव से निकालना चाहते हैं तो सीधे निकाल सकते हैं, झूठमूठ दोष लगाने की क्या जरूरत है?...मेरे बाप ने

एक दिन मानभंजन गाँव का नाम दूर-दूर तक चमकाया था। आप सीधे क्यों नही कहते कि आप उनका नाम मिटा देना चाहते हैं।"

इतना कहकर कुशल बाहर आ गया।

"चलो, हम लोग भी चलते हैं," मोहन ने कहा।

सभी लोग बाहर निकल आये। अकेला मति कमरे मे बैठा रहा। क्या मेरा साम्राज्य टूट रहा है, उसने अपने आपसे पूछा ? अब कोई नयी चाल सोचनी होगी।

इसके बाद से तेपांतरी ने जो दरवाजा बंद किया तो खोला ही नही। खूब मोटा शाखू की लकड़ी का, लोहे के पत्तर से मंढा, तेल पिया, पुराना दरवाजा था। मति चाहे भी तो उस दरवाजे को तोड़ना संभव न था।

वह दिन गया, रात गयी। दूसरे दिन तीसरे पहर बताशी ने मति से कहा—"कही फाँसी तो नही लगा ली छोकरी ने ? बड़ा कलंक होगा।"

"पुकारकर देखा है ?"

"कितनी बार। बाबू एक बात कहती हूँ मैं इन सब चक्करो मे नही पड़ूँगी, मैं तो जा रही हूँ।"

"अच्छा, मैं निकलता हूँ। आज वापस नहीं आऊँगा। शहर जाना है। तू उसे बाहर निकलने को कह, कुछ खिला-पिला दे।"

मति के चले जाने के बाद तेपांतरी ने अपने आप दरवाजा खोला। बताशी से कोई बात नही की। कुएँ मे पानी खींचकर अच्छी तरह स्नान किया। फिर आकर बताशी से ऐसे कहा जैसे कुछ हुआ ही न हो—"भात है ?"

"भात तो नही है—बना ही नही। गुलाब जामुन रखे हैं खायेगी ?"

"चलो, दोनो खाते हैं।"

गुलाब जामुन खाते-खाते बताशी और तेपांतरी दोनों की आँखो से आँसू चू रहे थे।

काफी देर बाद बताशी ने पूछा—"जमीन देने के लिए कह रहा था ?"

"तुम सब सुन रही थी ?"

"मैंने तो उसी दिन सब सुना था, सुनकर मैं तो काठ हो गयी। पैसे

वालों की रीति ही निराली होती है। उधर बहू हस्तपाल में दम तोड़ रही है···इधर···।"

"भाभी ने पहले ही भाँप लिया था।"

"भाँपती क्यों नहीं? समझ तो मैं भी रही थी। तुझे इशारे-इशारे से बताती भी थी, पर तूने ध्यान नहीं दिया।"

"मैंने इतना नहीं सोचा था।"

"अब क्या करेगी?"

"संक्रांति में कितने दिन है?"

"और तीन दिन है। क्या करेगी अब?"

तेपांतरी के मन में सभी के प्रति अविश्वास का भाव भर गया था। बताशी तो उन्हीं लोगों की है। उन्हें छोड़कर इसकी कोई गति नहीं है। अगला जब दरद दिखाता है तो दुखी का मन गलकर विश्वास करना चाहता है, पर विश्वास किया नहीं कि मारे गये। मति बाबू कल के अपमान की बात आसानी से नहीं भूलेंगे, बदला जरूर लेंगे। आज नहीं आयेंगे—कह गये है। इसका मतलब है आज जरूर आयेंगे।

"दुर्गापुर में हमारा एक ससुर है। सोचती हूँ उसी के पास चली जाऊँ।"

"पर, वे भी तो कभी खोज-खबर लेते नहीं?"

"जाकर उन्हीं के पाँव पड़ूँगी।"

"बाबू को बताकर जाना।"

"जरूर बताऊँगी। चोरी करके थोड़ा ही जा रही हूँ कि चुपचाप चली जाऊँगी।"

गुलाब जामुन की गरमी से बताशी निढाल होकर सो रही थी। सुनसान दोपहरी थी। तेपातरी ने अपना बाक्स खोला। जो पैसे थे आँचल में बाँधे। सन्नाटे में कहीं दूर से रेडियो में गाने की आवाज आ रही थी। तेपांतरी पाँव दबाये घर से निकली। माँ का चेहरा और पीतावर का चेहरा बहुत धुंधले याद आ रहे थे। खिड़की के रास्ते निकलकर तेपातरी ने मति बाबू का केला-बगान पार किया, पोखरी पार की। चलो, तेज कदमों से निकल चलो। दनू बाबू के घर के पीछे वाले उजाड़ खंड में से

होती हुई वह अजामिल बाबू के ध्वस्त गोशाले तक पहुँची। गोशाला पत्थर के चौकोर टुकड़ों को जोड़कर बना था। पुराने पत्थरों का फर्श बेहद ठंडा था। उस जगह जहाँ साँप रेंगते थे, जहाँ भेड़िये घूमते थे, वहीं तेपांतरी बहुत सुख की नींद सो गयी।

पहले मति ने सोचा कि वह तेपांतरी की तलाश करे। फिर ख्याल आया—जो हुआ अच्छा ही हुआ। पोटोपाड़ा वह गयी नहीं। गाँव की चौहद्दी में नहीं है। बताशी कह रही है दुर्गापुर जा सकती है। ठीक है। जाने दो। दुर्गापुर कोई अगम्य स्थान नहीं है। उसे ढूँढ़ ही लूँगा। पीतांबर के मालिकों को उसके भाई का दुर्गापुर वाला ठिकाना मालूम होगा। अभी मनसा मेला खतम हो, फिर देखेंगे।

दो दिन बाद ही संक्रांति थी। मेले की उत्तेजना के साथ ही तेपांतरी के रहस्यमय ढंग से गायब हो जाने की उत्तेजना भी शामिल हो गयी थी। *अपने मन का दुख मन में ही दबाये कुशल सभी पटुओं से कह रहा था—* "देखो भाई, इस बार हमें अपनी पूरी कला दिखानी है।"

संक्रांति की सुबह जब औरतें मनसा थान की धुलायी करने आयीं तो उन्होंने वहाँ पड़ी हुई तेपांतरी को देखा। रूखे बालों को छितराये, मैले कपड़े पहने तेपांतरी जमीन पर पड़ी थी।

दूध और पानी से पेड़ की जड़ धोने ही जा रही थी भामी बुढ़िया कि तेपांतरी ने दूध-पानी का लोटा अपनी ओर खींच लिया और उसमें मुँह लगा दिया। दूध-पानी पीकर फिर वैसे ही लेट गयी।

इसके फलस्वरूप पल-भर में चारों ओर बात फैल गयी कि तेपांतरी के सिर पर देवी मनसा की सवारी हो गयी है। लोग भाग-भाग कर उसे देखने इकट्ठा होने लगे। तेपांतरी ने दुबारा किसी के हाथ से दूध-पानी का घड़ा खींचकर पी लिया। तेपांतरी का मन और शरीर बुरी तरह थक गये थे। उसे अपने चारों ओर सब कुछ बड़ा धुँधला-धुँधला और गड्मड नजर आ रहा था। मनसा थान पर वह इसलिए आकर सोयी थी कि बिना खाये-पीये जान दे देगी। फिर उसने दूध-पानी क्यों पीया?

"जरूर मेरे ऊपर देवी की सवारी हुई है, खुद तेपांतरी ने सोचा।

पता नहीं कौन उसके ऊपर नया कपड़ा डाल गया। हाथ पकड़कर

कोई उसे छाया में ले गया। दूसरे गाँवों से लोग आने लगे। ढोल-ताशे बजने लगे। मच्छरों के काटने से दो रात जागी तेपांतरी की आँखें लाल हो रही थी। इतना शोरगुल क्यों हो रहा है, तेपांतरी सोचती है? कुशल को घर की जमीन नहीं मिली, क्या इसीलिए इतना शोरगुल हो रहा है?

मति को यह बात बहुत बाद में सुनायी पड़ी। वह बेहद व्यस्त था। बस-अड्डे से 'यात्रा पार्टी' को लाना, उन्हें स्कूल में टिकाने ले जाना, फिर अजामिल के मकान की चाबी न मिलने से आठ मील दूर सिंचाई विभाग के डाक बंगले में उन्हें ठहराने ले जाना—काफी काम था उसके सिर पर।

इसी बीच उसे किसी ने बताया कि मनसा-थान पर शोरगुल हो रहा है। तेपांतरी के ऊपर मनसा की सवारी हुई है। पटुए गाना गा रहे हैं, सपेरे साँप नचा रहे हैं, कई एक बकरों की बलि चढ़ चुकी है, पर असली भीड़ उसी जगह है। सुनकर मति का सिर चकरा गया।

"मति दादा, तुम चलो।"

"मैं जाकर क्या करूँगा?"

मोहन नाराज हो गया—"क्या करोगे माने? वहाँ स्टेज नहीं बन सकेगा।"

"वे सब आदमी वहाँ क्या कर रहे हैं?"

"और क्या कर रहे है। तेपांतरी कभी चलती है, कभी बैठ जाती है। लोग उसी के साथ चलते हैं। जहाँ तेपांतरी है, वहाँ भीड़ है।"

"अच्छा मजाक कर रहे हो तुम लोग! यात्रा-पार्टी आठ बजे से यात्रा शुरू करने वाली है और तुम लोग अभी तक स्टेज भी नहीं बाँध पाये?"

"वहाँ जाय कौन? चारों ओर साँप नाच रहे हैं।"

"थाने गये थे?"

"वे लोग नहीं आयेंगे।"

"क्यों?"

"सब काम तो तुम खुद करते हो। हम लोगों को किसी काम में आगे आने ही नहीं देते। दारोगा कहता है—"मति बाबू को बुलाओ।"

"अच्छा!"

"कहता है—'कानून भंग हो रहा होता तो जाता। हम धर्म के

मामले में नहीं आयेंगे। और साँपों को गिरफ्तार करने का कोई धारा इंडियन पेनल कोड में नहीं है।' पिछली बार चड़क पूजा में किसी ने त्रिशूल से एक आदमी का पेट फाड़ दिया था, तब भी दारोगा नहीं आया था।"

"समझा।"

"यहाँ बैठे-बैठे समझने की जरूरत नहीं है, थाने में जाकर समझो। कलकत्ता से नाच-पार्टी आयी है, हजारों रुपयों के टिकिट बिके हैं। सब तुम्हारी जिम्मेवारी है, समझे ?'

"सब मेरी जिम्मेवारी है ?"

"जरूर तेपांतरी कहाँ गयी थी ? कहाँ रखा था तुमने उसे ? नाच-पार्टी को बयाना देने के बहाने इस मामले में भी तुम घुस पड़े। जयंत बाबू के पैसे हजम कर गये। टिकिट के पैसे, मेला के पैसे मार कर निगल जाना चाहते हो ? तुम्हारा सर्वनाश करके छोड़ूँगा। क्या समझ रखा है !"

मति की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। बड़े यत्न से उठाया गया राजनीतिक प्रभुत्व का महल ढह रहा था। चावल के गोदाम में चूहों की आढ़त खुल गयी थी। जो बात मोहन कह रहा है, वह निश्चय ही और लोग भी कह रहे होंगे।

"मोहन ! क्या स्टेज का काम कुछ भी नहीं हुआ ?"

"पूरा हो चला था···पर अब तो सब टूट-फूट गया है, वह भी देख कर आ रहा हूँ। उस भीड़ को हटाये कौन ?"

"तेपांतरी को वहाँ से खींचकर ले आओ।"

"मजाक नहीं है। देह पर साँप छोड़ देंगे लोग।"

पराजित, विह्वल मति ने अंत में कहा—"अच्छा ! चलो। देखता हूँ।"

पुलिस और अपने कुछ चमचों के साथ मति भीड़ को ठेलकर अंदर जाने की कोशिश कर रहा था, पर असफल हो रहा था। भीड़ की ठट् लगी थी। सपेरे साँप लपेटे घूम रहे थे। लगता था स्टेज आज नहीं बन पायेगा।

परे हटो ! रास्ता दो ! पर कौन सुनता था।

ठेलाठेली करते हुए किसी तरह मति और उसके संगी बीच में जा

पहुँचे। तेपांतरी बैठी थी, बावली-सी। फिर वह आँख मूँदकर भूलने लगी, डोलने लगी।

"तेपांतरी !" मति ने पुकारा।

तेपांतरी ने लाल-लाल आँखों से उसकी ओर देखा।

"म ''ति'''बा'''बू !!"

मति और तेपांतरी एक दूसरे के आमने-सामने थे। मनसा देवी की सवारी। देवी की सवारी। प्रश्न करो, उत्तर पाओगे। अब, पहली बार मति प्रश्न और तेपांतरी उत्तर थी।

मति की आँखों का प्रश्न पढ लिया था तेपांतरी ने। चारों ओर उत्सुक जनता की भीड़ थी, अपार भीड़। एकाएक तेपांतरी के चेहरे पर भयानक घृणा उभरी। फिर उसने बाँस की एक छड़ी मुट्ठी में कसकर पकड़ ली। क्रोध से उसका चेहरा डरावना हो उठा, पट पर अंकित क्रुद्ध मनसा की तरह। तेपांतरी ने बाँस की छड़ी वाला हाथ ऊपर करके हुँकार किया।

"मुझे बरगला कर यह आदमी अपने घर ले गया था। तेरी माँ से इसने मेरी जमीन ठग ली।'''"

"वह हस्पताल गयी तो मेरा धर्म नष्ट करना चाहता था यह मति ! चांडाल !'''"

"नहीं, नहीं। यह झूठ है।" मति चीखा।

"चोप साला ! देवी को गाली देता है।" कई आवाजें एक साथ उभरी। भीड़ क्रुद्ध साँप की पूँछ की तरह लहरायी।

"''' इसने कहा था—ब्याह करेगा, जमीन लिख देगा। और इसी ने निरपराध कुशल चित्रकार को जमीन का पट्टा नहीं दिया। उस पर झूठी तोहमत लगायी '''।"

सभी लोग हो-हो करने लगे। चारों ओर छि-थू होने लगा। पुलिस मति को खींचकर बाहर ले जाने की कोशिश करने लगी। मति की जान खतरे में थी। चारों ओर साँप थे। साँपों की अपलक नीली दृष्टि में नफरत का जहर झलमला रहा था। मति की आँखों से पराजय के आँसू बहने लगे।

कुछ देर बाद तेपांतरी पर से देवी की सवारी खतम हो गयी। वह फिर मनुष्य बन गयी। हटो, रास्ता दो। शोर मच गया। पटुए गाने लगे देवी के गीत। ढोल-झांझे बज उठे। बहुत दिनों बाद पहले जैसा मेला लगा था।

तेपांतरी दौड़कर कुशल के पास गयी। उसका हाथ जोर से थाम कर कहा—"कुशल ! मयूरभंज जाओ या चाहे जहां जाओ, मुझे भी साथ ले चलो।"

कुशल की आंखें हँस रही थीं, होंठ मुस्करा रहे थे।

"चलो, चलो तेपांतरी ! तुम मेरे पट की बेहुला हो। आज नदी चित्रकार के पट लोगों को दिखा लूं। जी भर के देवी के गीत गा लूं। फिर हम-तुम यहां से चले जायेंगे, लहरों पर तिरते हुए एक दूसरे की डोंगी बनकर। हम लोगों की जिंदगी जैसे गांगनी नदी की तरह होगी।"

उन्हें घेरकर पटुए और ऊंचे स्वर में मनसा के गीत गा उठे।





महाश्वेता देवी

बंगला की प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी का जन्म 1926 में ढाका मे हुआ था। पिता श्री मनीष घटक सुप्रसिद्ध लेखक थे। प्रारम्भिक पढाई शान्ति-निकेतन में हुई। कलकत्ता यूनिवर्सिटी से अंग्रेजी-साहित्य में एम० ए० तक की शिक्षा पायी।

महाश्वेता जी वर्षो बिहार और बंगाल के घने कबाइली इलाकों मे रही हैं और अब भी विभिन्न जनजातियों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। इन्होंने अपनी रचनाओ में उन क्षेत्रों के अनुभव को अत्यन्त प्रामाणिकता के साथ उभारा है।

गैर-व्यावसायिक पत्रों में छपने के बावजूद इनके पाठकों की संख्या बहुत बड़ी है। 1979 में इन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

समर ने जवाब दिया, बहुत ही खास जरूरत न हो तो विवाह की चीजें कौन बेचता है भला !

—ऐसी कौन-सी मुसीबत आ पड़ी ?

—वह आप नहीं समझ पायेंगे ।

गिन कर रुपये जेब में रख लिये उसने । फिर उधार की फिराक में वह बाजार गया । सूद का धन्धा करता था आदमी । बहुत पहले बरानगर उनके घर आया करता था । कई बार उसके पिता से अच्छे सूद पर उधार लेकर बाजार में व्यापारियों को सौ प्रतिशत पर चढ़ा देता था ।

समर को देखते ही पहचान गये बेचाराम बाबू ।

बोले, आप यहाँ, मामला क्या है ?

समर ने कहा, तीन हजार रुपयों की जरूरत थी इसी वक्त । अगर आप दे दें तो जो सूद कहियेगा दे दूँगा ।

कारबारी आदमी थे बेचाराम बाबू ! बाजार में लोगों से रुपये पर रुपया सूद लेते थे । इसमें दोनों में से किसी को भी नुकसान नहीं था ।

बोले, मैंने तो सुना था कि आप अच्छी नौकरी पर हैं ।

समर बोला, अच्छी हो या बुरी, नौकरी कर ही रहा हूँ, महीने में पाँच सौ रुपये भी मिल जाते हैं, पर आदमी पर वक्त-बेवक्त मुसीबत तो पड़ ही जाती है, नहीं तो आपके पास क्यों आता ?

—हाँ यह तो यह ही, यह तो यह ही ।

कहकर उन्होंने तीन हजार रुपये निकाल दिये और रसीद चार हजार की ले ली । देनी पड़ी समर को ।

अब बाकी बचे डेढ़ हजार ।

आफिस में उस दिन कैश नहीं आया । पर तब भी जो कभी नहीं किया था समर ने, वही किया । पन्द्रह सौ रुपये निकाल कर जेब में रख लिये । रजिस्टर में नहीं लिखे, सोचा धीरे-धीरे पूरे कर देगा । सारी इन्द्रियाँ कनक को देखने के लिये उन्मुख थीं । मिसेज दास ने वायदा तो किया था ।

तदनन्तर सारा रुपया पोर्टफोलियो में रखकर शाम को आफिस से निकलने लगा तो असिस्टेंट तारापद ने पीछे से आवाज दी—

बोला, सर ।

घूमकर समर ने पूछा, कुछ कहना है ?

—वह पन्द्रह सौ की एन्ट्री करने को मना किया आपने, तो फिर किस एकाउन्ट में पोस्ट करूँ !

समर ने कहा, उसे पोस्ट करने की जरूरत नही है। मैं परसों आकर जो करना होगा बता दूँगा।

आफिस से सीधा मिसेज दास के घर पहुँचा वह।

वह तैयार बैठी थीं। बोलीं, तुम्हारा ही इन्तजार कर रही थी समर, सोच रही थी इतनी देर क्यों हो रही है। लाये हो।

हाँफते हुए समर ने कहा, हाँ, लाया हूँ।

रुपये लेकर गिनते हुए मिसेज दास बोलीं, पता है, कनक ने तो मुझे डरा ही दिया था।

—क्यों ? समर ने पूछा—

—वह कह रही थी कि तुम रुपये नहीं दोगे।

—उसके मुँह से कैसे निकली यह बात ? और आपने भी उसका विश्वास कर लिया, क्यों ? जरा आश्चर्य से समर ने पूछा।

जल्दी से सफाई दी मिसेज दास ने, नहीं-नहीं, मैं क्यों विश्वास करती, मैं क्या तुम्हें जानती नहीं ?

कुछ देर चुप बैठा रहा समर, फिर पूछा, कनक कब आई थी ?

—आज बहुत जल्दी आ गई थी, मैं अभी जाकर उसे रुपये दे आती हूँ और कल यहाँ आने को भी कह आऊँगी।

—कल किस वक्त आयेगी वह ?

—तुम बताओ, तुम कब आओगे ?

समर ने कहा, कल मैं आफिस नहीं जाऊँगा, आप बताइये कब आना ठीक रहेगा।

कुछ सोचकर मिसेज दास ने कहा, तुम कल ठीक तीन बजे आना। कनक से भी उसी समय आने को कहूँगी—फिर तुम दोनों को अपने पार्लर में बिठाकर मैं ड्राइंगरूम में आ जाऊँगी। तुम दोनों एकान्त में आपस में निपट लेना।

समर ने कहा, ठीक है। आप रुपये दे आइये उसे।

मिसेज दास बोली, मैं अभी जाकर अपने हाथ से देकर आऊँगी।

समर दरवाजे पर पहुँचा ही था कि मिसेज दास ने पीछे से पुकारा सुनो समर, एक बात कहना भूल गई।

—कहिये ?

—कनक कह रही थी कि बहुत दिन बाद तुमसे मिलना होगा, इसलिये जरा डर लग रहा है उसे। तुम उसे ज्यादा मत डाँटना। बड़ी अच्छी लड़की है, कई दिनों से देख रही हूँ उसे। भाई के डर से तुम्हें चिट्ठी नहीं लिख सकी। अब भाई के दिन अच्छे नहीं रहे इसलिये जरा निकल पा रही है। मुझे वचन दो कि तुम उसे डांटोगे नहीं?

वह बोला, आप यह क्या कह रही हैं मिसेज दास, मैं कनक को डाटूंगा? कनक मेरे लिये क्या है, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकती—और ये रुपये किस तरह, कितनी मुश्किल से इकट्ठे किये हैं, किसी दिन बताऊँगा आपको। तब पता लगेगा आपको कि मैंने उसके लिये क्या नहीं किया।

अगले दिन समर की दोपहर जैसे बीत ही नहीं रही थी। उसे लग रहा था कि तीन जैसे बजेंगे ही नहीं, संसार की सारी घड़ियाँ रुक गई थीं। बार-बार घड़ी देख रहा था।

आफिस की छुट्टी थी फिर भी ऐसा लग रहा था कि काम बहुत था। दाढ़ी घिस-घिस कर बनाई थी, कपड़े बार-बार उल्टे-पल्टे थे—बहुत दिन बाद कनक से मिलेगा, इस पोशाक मे कैसे जायेगा उसके सामने। सोच रहा था, वह भी बदल गई होगी। चोरबागान में भी बहुत परिवर्त्तन हो गया होगा। कनक की माँ मर गई थीं, भाई की उम्र हो गई थी। कर्ज सर पर था। एक दिन इसी भाई ने उसके मुँह पर दरवाजा बंद कर दिया था, उसी भाई का कर्ज चुकाने के लिये उसने अपनी घड़ी, अँगूठी बेच दी थी, सूद पर रुपया लिया था। आदमी में कितना बदलाव आता है। अहंकार करने लायक कुछ भी तो नहीं है दुनिया में। किस चीज का अहंकार करे आदमी! कुछ भी तो नित्य नहीं है। उसने ही क्या कभी सोचा था कि बरानगर का मकान बेचकर मेस में रहना पड़ेगा, कनक से बिछड़ना पड़ेगा और फिर से मिलन होगा। कहाँ मिसेज दास थीं और कहाँ वह था, मिलने की कोई संभावना ही नहीं थी—लेकिन परिचय होने पर एक के बाद एक घटनाएँ चलचित्र की तरह घटती चली गईं। उन्होंने उसकी कहानी सुनी और दया करके फिर से कनक से मिलाने के लिये भाग-दौड़ की। नही तो कौन किसी के लिये इतना करता है।

मेस से निकलते समय रसोइये से समर ने कहा, ठाकुर मैं जा रहा हूँ, दरवाजा बंद कर लो।

रसोइये ने पूछा, आज कितने बजे आयेंगे बाबू ?

ठिठककर खड़ा हो गया समर। उसी मेस में आना पड़ेगा उसे फिर से ? कनक को यहाँ लेकर आयेगा ! इस मेस में रहेगी कनक ? यहाँ कैसे रहेगी वह ? पर और कहाँ रहेगी वह ? पहले से ही कोई मकान किराये पर ले लेना चाहिये था उसे।

फिर एकदम से बोला, आज दो जनों का खाना रखना ठाकुर।

—दो जनों का ? आश्चर्य से रसोइये ने पूछा—

—हाँ, मेरे साथ एक जना और होगा खाने पर।

इतना कहकर वह सड़क पर आ गया। हाथ की घड़ी बिक गई थी समय देखने का उपाय नहीं था। एक दुकान पर खड़े होकर नजर डाली तो देखा डेढ़ बजा था कुल। मिसेज दास के घर पहुँचने में आधा घंटे से अधिक लगता ज्यादा से ज्यादा। फिर भी एक घंटा बाकी रहता। समस्या हुई वह घटा कैसे बिताये। ट्राम से उतरकर पार्क में चला गया दोपहर में पार्क में भी कोई नहीं होता। एक खाली बेंच पर बैठ गया जाकर।

नौकरी करने के बाद से ऐसी दोपहर नहीं देखी थी उसने। जब बरानगर में अपना मकान था, नौकरी करने की स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी, तब ऐसी खाली-खाली दुपहरी बिताया करता था, लेकिन उन दिनों तो सब कुछ ही भिन्न था, दुनिया का रूप ही और था।

अपने में लीन आकाश-पाताल सोच रहा था समर कि कहीं पास की किसी घड़ी के ढग-ढंग दो घंटे सुनकर उछल पड़ा वह।

बस एक घंटा और रह गया था।

पार्क से निकल कर पैदल चल दिया वह ! दूर ही कितना था। जरा जल्दी-जल्दी चलने पर पन्द्रह मिनट में पहुँचा जा सकता था। धीरे-धीरे टहलते हुए चलने लगा समर। सोचने लगा, तीन से पहले पहुँचना उचित नहीं होगा। मिसेज दास विलायती कायदे कानून की हिमायती थी, हर काम घड़ी की सुई से होता था।

पर समय तो जैसे ठहर गया था। कब तक इन्तजार करता वह। समय से पहले ही जा पहुँचा। और दिन दरवाजा बद रहता था, घंटी बजानी पड़ती थी, अब्दुल आकर दरवाजा खोलता था।

लेकिन उस दिन दरवाजा खुला हुआ था।

जाकर ड्राईंग रूम में बैठ गया वह।

जरा देर बाद अब्दुल कमरे में आया तो समर ने पूछा, मेमसाहब हैं अब्दुल ?

रुआँसू होकर अब्दुल बोला, मेमसाहब चली गईं हुजूर।

—कहाँ चली गईं ? कब आयेंगी ?

—यह तो नहीं मालूम हुजूर, अब नहीं आयेंगी वह।

—क्यों ? नहीं आयेंगी तो जायेंगी कहाँ ? मिस्टर दास हैं ?

—वह भी चले गये। कोई नही है घर में।

—कब गये ?

—कल रात को हुजूर। कल रात के गये अब तक नहीं आये।

चौंक उठा समर। कहाँ गये दोनों ? कुछ कहकर क्यों नहीं गये ? डर सा लगने लगा उसे। अगर कनक नहीं आई तो ? वह भी कहीं गायब हो गई तो ?

समर ने फिर पूछा, गाड़ी लेकर गये हैं ?

अब्दुल बोला, हुजूर, गाड़ी तो बिक गई, चरणसिंह को कल हिसाब करके छुट्टी दे दी थी।

तो फिर ? गाड़ी क्यों बेच दी मिसेज दास ने ? नई गाड़ी खरीदेंगी क्या ?

समर ने कहा, थोड़ी देर बैठता हूँ। अब्दुल, क्या पता आ ही जायें।

—ठीक है बैठिये—अब्दुल ने कहा।

फिर बोला, आज सुबह से बहुत फोन आ रहे हैं हुजूर—सब मेमसाहब को पूछ रहे है।

उसी समय एक सज्जन आये और पूछने लगे—

—मेमसाहब हैं ?

अब्दुल ने कहा, नही हुजूर न मेमसाहब है और न साहब।

वह सज्जन बोले, कहाँ चले गये ? मेरा छह महीने का किराया बाकी है, आज देने को कहा था।

अब्दुल बोला, हम लोगों को भी दो महीने से तनख्वाह नहीं मिली हुजूर—आज देने को कहा था।

वह बोले, समझ गया। अब बैठकर क्या होगा। चलता हूँ।

अब समर का भी जी धुकपुक करने लगा। पन्द्रह हजार रुपये दे गया था वह। तो क्या कनक को रुपये नही पहुँचाये उन्होंने। देखते-देखते और कई लोग आ गये, उधर टेलीफोन भी बार-बार बजने लगा।

मिस्टर अगरवाला, मिस्टर मेटा, मिस्टर सोनपार, मिस्टर बनर्जी—सब आ पहुँचे और खबर सुनकर सिर पकड़कर बैठ गये।

तभी समर को बाहर घूँघट निकाले कोई लड़की आती दिखाई दी।

बाहर जाकर खड़ा हो गया वह।

कनक !

पास आते ही कनक ने भी उसे देख लिया।

समर ने पुकारा, कनक ?

मुँह उठाकर कनक ने पूछा, तुम यहाँ ?

समर ने पूछा, इसका मतलब है, तुम्हें रुपये मिल गये ?

अवाक रह गई कनक। बोली, कैसे रुपये ?

—क्यों, तुमने मिसेज दास से कहा था न कि तुम्हें पन्द्रह हजार रुपयों की जरूरत है। मिले नहीं तुम्हें ?

दो पल को तो कनक का मुँह खुला का खुला रह गया।

फिर बोली, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा।

समर ने पूछा, तो फिर तुम यहाँ क्या करने आई हो ?

पहले तो जरा हिचकिचाई कनक, फिर बोली, मिसेज दास ने आने को कहा था।

—क्यों ? मिसेज दास से तुम्हारा परिचय कैसे हुआ ?

उसने कहा, हम लोग जिस महिला समिति में सिलाई सीखती है, मिसेज दास उसकी प्रेसीडेन्ट है।

—तो यहाँ क्या करने आई हो ?

—उन्होंने कहा था कि तुम्हें रुपये की बहुत तंगी है, आफिस के कैश से रुपये ले लेने के कारण जेल जाने की नौबत आ गई है, इसलिये तुम्हें देने के लिये अपना सारा जेवर उन्हें दे गई थी।

समर ने पूछा, सारा जेवर ?

—हाँ, सारा जेवर, जितना भी शादी में मिला था।

समर ने कहा, वह तो बहुत सारा था, करीब तेरह हजार का होगा।

कनक बोली, हाँ। मिसेज दास कह रही थीं कि तुम्हें तेरह हजार की जरूरत है।

वहीं सर पकड़कर बैठ जाने को जी चाहा समर का।

कनक बोली, क्या हुआ ? ऐसे क्यों कर रहे हो ? क्या और रुपयों की जरूरत है ?

समर बोला, मुझे एक रुपया भी नहीं मिला कनक, उल्टे मैं ही तुम्हें देने के लिये कल मिसेज दास को पन्द्रह हजार रुपये दे गया था।

—पर मुझे तो रुपये की जरूरत नहीं थी।

आश्चर्य से समर ने कहा—लेकिन मिसेज दास तो कह रही थीं कि तुम्हारा मकान बिकने वाला है। तुम्हारे भैया पर बहुत कर्जा चढ़ गया है।

—क्या ? चौंक उठी कनक।

फिर बोलीं, मैंने तो ऐसी कोई बात नहीं कही। मैं तो बस यह पता लगाने आई थी कि तुम्हें रुपये मिल गये या नहीं, और फिर भैया तो मर भी गये।

—कब ?

—बहुत दिन हो गये। तभी से मैंने स्कूल में नौकरी कर ली। पर मिसेज दास हैं कहाँ ?

—वह नही है, भाग गई हैं।

फिर जाने क्या सोचकर जोर से हँस पड़ा वह।

बोला, वह तो हुआ, वह हम दोनो को ही चूना लगा गईं, पर तब भी उन्हें नमस्कार करता हूँ, वह अगर इस तरह नही ठगती तो आज तुमसे मिलना कैसे होता ?

फिर जरा रुककर समर ने पूछा, लेकिन यह बताओ कि भैया के मरने के बाद तुमने एक बार भी मेरी खबर क्यों नही ली ?

कनक की आँखें छलछला आईं।

अवरुद्ध कंठ बोली, क्यों लेती ? तुम दूसरा विवाह करके सुख चैन से हो, मैं बीच में आकर क्यों परेशान करती ?

ठगा सा रह गया समर।

बोला, मैंने विवाह कर लिया ? यह किसने कहा तुमसे ? किससे सुना, बताओ ?

गर्दन झुकाकर कनक ने कहा, मिसेज दास ने। उन्होंने सब बता दिया है मुझे।

मुझे याद है कि इस मामले के इन्वेस्टिगेशन का भार मुझ पर ही पड़ा था। रिश्वतखोरी पकड़ने की नौकरी में कुछ ही साल था मैं।

अनेकों तरह की अभिज्ञताएँ हुई थी उस नौकरी में। उनमें यह समर और कनक की भी घटना थी। आप लोगों को अगर यह कहानी अच्छी लगे तो इस तरह की और भी कहानियाँ सुनाऊँगा। कनक और समर आज भी कलकत्ते में एक फ्लैट में रहते हैं। प्रायः मिलना होता है। सुखी जीवन है उनका मैंने बस उनका नाम-धाम बदल दिया है। नहीं तो सब सच है।

और मिसेज दास ? उनका पता नहीं चला। वह शायद किसी और शहर में जाकर अभी भी यही धंधा चला रही हैं।

